* वन्देजिनवरम् *

श्रीजैनतत्वप्रकाशिनी सभाका अट्ठारहवां दौरा,

शास्त्रार्थ अजमेरका पूर्वरङ्ग

और दो मौखिक शास्त्रार्थोंका

पूर्ण विवरण ॥

—–—○*○——

जिसको

चन्द्रसेन जैनवैद्य मन्त्री श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी
सभाने सर्वसाधारणके हितार्थ छपाकर
प्रकाशित किया ॥

—○*○—

श्रीवीर निर्वाणाब्द २४३८

प्रथमावृत्ति १५०० } { की० =)॥ ढाई आना सैकड़ा १४) रु०

Printed by B. D. S. at The Brahm Press——Etawah.

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी

बिकाऊ पुस्तकें ।

॥ आर्योंका तत्त्वज्ञान ॥

इसमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्त्व और वेद प्रकाशकत्व पर विचार तथा आकाश और उसके शब्द गुण होने पर विचार ऐसे दो लेख हैं। कीमत)॥ आध आना । सै० २)

॥ ईश्वरका कर्तृत्व ॥

इस में ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व का खण्डन है । की० एक पाई । सै० ।≡)

॥ कुरीति निवारण ॥

इस में बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, वेश्यानृत्य, आतशबाजी, फुलवारी और अश्लील गानकी खराबियां दिखाई हैं। की०)। एकपैसा । सै० १)

॥ भजनमण्डली प्रथमभाग ॥

जैनतत्वस्वरूपप्रदर्शक और कुरीतिनिषेधक नवीन सामयिक भजन हैं। की०)॥ सै० २)

॥ जैनियों के नास्तिकत्त्व पर विचार ॥

यथा नाम तथा गुणः । की०)। एक पैसा सै० १)

॥ धर्मामृत रसायन ॥

संसार दुःखसे संतप्त पुरुषोंको सुख शान्ति दाता महौषधि। की० -) एकआ० सै०५)

॥ आर्यमत लीला ॥

इस में आर्य वेदों और सिद्धान्तोंकी पोल है । की० ।=) छः आना । सै० २४)

॥ भजनमण्डली द्वितीय भाग ॥

उपर्युक्त प्रकारके उत्तमोत्तम भजन हैं । की०)॥ आध आना । सै० २)

॥ भजन स्त्रीशिक्षा ॥

इसमें स्त्रीशिक्षाके उत्तमोत्तम भजन हैं । की०)। एक पैसा । सै० १)

॥ सृष्टिकर्तृत्व मीमांसा ॥

इसमें सृष्टिकर्तृत्व पर उत्तम विवेचन है । की० -) एक आना । सै० ५)

॥ भूगोल मीमांसा ॥

कीमत)॥ आध आना । सै० २)

॥ आर्योंकी प्रलय ॥

इसमें आर्यों के प्रलय सिद्धान्त की पोल है । की० -) एक आना । सै० ५)

॥ कंवर दिग्विजय सिंह का सचित्र जीवन चरित्र और व्याख्यान ॥

कीमत फी पुस्तक)॥ आध आना । स० ३)

पताः—मन्त्री चन्द्रसेन जैनवैद्य–इटावा ।

* वन्दे जिनवरम् *

श्रीजैनतत्व प्रकाशिनी सभाका अट्ठारहवां दौरा ।

और

शास्त्रार्थ अजमेरका पूर्वरङ्ग ।

अजमेरमें कुछ दिनोंसे वहांके उत्साही और साक्षर जैन नवयुवकोंने एक श्रीजैन कुमारसभा अजमेर नामक संस्था स्थापित कर रक्खी है और उसके द्वारा वह निज ज्ञान और चरित्र की वृद्धि करते हुए जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना कर स्वपर कल्याण करनेका सदैव उद्योग किया करते हैं। विशेषतः अङ्गरेजी शिक्षा प्राप्त या प्राप्त करने वाले नवयुवकोंको काम करनेका बड़ा उत्साह हुआ करता है और जहां कहीं वे काम होता हुआ देखते हैं उस में जाकर सम्मिलित हो जाते हैं। वर्तमानमें कालदोष तथा अन्य भी कई कारणोंसे हमारा जैनसमाज अपने सत्यधर्मके प्रचार करनेके उद्योग और तद्द्वारा संसारको लाभ पहुंचाने के कार्यमें बहुत पिछड़ा हुआ है, अतः जैनसमाजके होनहार और साक्षर नवयुवकोंमेंसे बहुतसे जैनसमाजमें कुछ काम होता हुआ न देखकर उससे उदासीन हो जाते हैं और उन आर्यसमाजादि संस्थाओंमें (जो कि प्रचार आदिके करनेके अर्थ प्रसिद्ध हैं जैसा कि उनकी कार्यप्रणाली व नित्यप्रति वृद्धिंगत होती हुई संख्यासे किसीको अप्रगट नहीं हैं) जाकर सम्मिलित हो काम करने लगते हैं। इसी नियमके अनुसार श्रीजैन कुमार-सभा अजमेरके कई होनहार व शिक्षा प्राप्त करने वाले सभासद (विशेष कर उसके कार्यपरायण और धर्मप्रचारका बड़ा उत्साह रखने वाले सुयोग्य मन्त्री बाबू घीसूलालजी अजमेरा) अजमेरकी आर्यकुमार सभामें जाकर सम्मिलित हो गये थे और वहांपर उन्होंने अच्छा काम किया। इटावहमें श्रीजैन तत्वप्रकाशिनी सभाकी स्थापना और उसकी स्थान स्थानपर जाकर व्याख्यान लेख तथा शङ्कासमाधानादि द्वारा जैनधर्मके प्रचार करनेके कार्यको देखकर तथा उसके प्रकाशित आर्यमतलीलादि ट्रैक्टोंको पढ़कर अन्य अनेकोंके साथ हमारे इन अजमेरके नवयुवकोंको भी बोध हुआ और उन्होंने भलीभांति जान लिया कि यद्यपि आर्यसमाज प्रत्यक्षमें शारीरिक सामाजिक और नैतिक उन्नति में जैनसमाजसे बहुत बढ़ा चढ़ा प्रतीत होता है परन्तु उसमें आत्माके यथार्थ कल्याण करनेवाली आत्मिक उन्नति बिल्कुल नहीं है जिससे कि वह

गन्ध रहित टेसू के फूल समान व्यर्थ ही है। जिस प्रकार अन्नका बोने वाला पुरुष अन्नके साथ ही तृणादि भी प्राप्त कर लेता है ठीक उसी प्रकार जैन धर्म्म द्वारा आत्मिक कल्याण के साथ ही हमारी सांसारिक उन्नतियां भी बराबर होती रहती हैं। ऐसा जान और मानकर हमारे ये नव युवक आर्य्य धर्म्म और आर्य्य कुमार सभा अजमेर को तिलाञ्जुलि देकर जैन धर्म्म में दृढ़ हुये और उन्होंने स्वपर कल्याणार्थ श्री जैन कुमार सभा अजमेर नामक संस्था खोली। इसी सभाका वार्षिकोत्सव अजमेर में तारीख़ २८ जून से १ जुलाई सन् १९१२ ईस्वी तक होना निश्चित हुआ और उसके अर्थ यह निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया।

॥ बन्देजिनवरम् ॥

अहिंसा परमो धर्मः * यतो धर्म स्ततो जयः

श्रीजैन कुमार सभा अजमेर का

प्रथम वार्षिकोत्सव।

प्यारे सज्जनों! जिस प्राचीन सर्व व्यापी जैन धर्मके नवयुवकोंकी यह सभा है वह धर्म किसी समयमें तीर्थंकरादि महर्षियोंके सिंहनिनादसे समस्त भूमण्डल पर विस्तरित होरहा था और उसकी विजय पताका चहुं ओर फहरा रही थी परन्तु कालदोषसे उसही धर्मके मार्तण्ड संचालकोंके अभावसे और इन दिनों अनेक मतमतान्तरोंके घोर आच्छादन के कारण सारा संसार अन्धकारयुक्त होरहा है, ऐसी दशा देखकर हमारी परम आदरणीय (श्रीमती जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा) ने पुनः सर्व सभ्य समाजके समक्ष सार्वभौम जैन धर्मका डंका बजाकर स्याद्वाद गर्भित अनेकान्त नयसे तथा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूपी रत्नोंके प्रकाशसे उस अन्धकारको नाश करनेका बीड़ा उठाया है।

आज हम लोग सहर्ष आप लोगोंके समक्ष यह हर्षोत्पादक शुभ समाचार सुनाते हैं कि हमारे इस वार्षिकोत्सवके समय (ता० २८ जूनसे १ जुलाई सन् १९१२ ई० तदनुसार मिती आषाढ़ प्रथम शुक्ल १४ शुक्रवारसे मिती आषाढ़ द्वितीय कृष्ण २ सोमवार संवत् १९६९ तक) उपर्युक्त श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा यहां पधार कर हम लोगोंके उत्साहको बढ़ावेगी और इसही अ-

वसर पर और भी अनेक विद्वज्जन उपस्थित होकर भिन्न २ विषयोंपर अनेक रोचक और सुनने योग्य व्याख्यान सुनावेंगे और शंका समाधानादि करके अज्ञानांधकारका नाश करेंगे।

अतः सर्व साधारण सज्जन महानुभावोंसे सविनय निवेदन है कि इस उत्सवपर अवश्यमेव पधारकर इस महोत्सवकी शोभा बढ़ावें।

कार्यक्रम।

	प्रातःकाल	सायंकाल
ता० २८ जून सन् १९१२ शुक्रवार—	रथयात्रा नगर कीर्त्तन, ७ बजेसे ११ बजे तक।	भजन व उपदेश, ७ बजेसे १० बजेतक।
ता० २९ जून सन् १९१२ शनिवार—	भजन व उपदेश, १० बजेसे १ बजे तक।	भजन व उपदेश ७ बजेसे १० बजेतक।
ता० ३० जून सन् १९१२ रविवार--	शंका समाधान, भजन व उपदेश, १० बजेसे १ बजे तक।	भजन व उपदेश ७ बजेसे १० बजे तक।
ता० १ जुलाई सन् १९१२ सोमवार--	शंका समाधान, भजन व उपदेश, १० बजेसे १ बजे तक।	भजन व उपदेश ७ बजेसे १० बजे तक।

श्रीजैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके शंका समाधानके नियम।

(१) शंका समाधान प्राइवेट व पबलिक दो प्रकारसे होगा। (२) प्राइवेट शंका समाधान जिज्ञासुओंके अर्थ मन्त्री की आज्ञानुसार उचित समय पर किया जावेगा। (३) पबलिक शंका समाधानके अर्थ लिखित प्रश्नपत्र प्रथमवार तारीख २९ जून व द्वितीयवार तारीख ३० जूनको प्रातःकाल १० बजे से १ बजे तक मन्त्रीको देदेना चाहिये। (४) विद्वानोंके कहे हुए व्याख्यान और दिगम्बर जैनऋषि प्रणीत ग्रन्थोंमें तत्त्वविषयक ही शंकायें ली जावेंगी। (५) एक दिनमें तीनसे अधिक प्रश्नपत्र नहीं लिये जावेंगे जिनमेंसे एक धर्मका एक ही प्रश्नपत्र लिया जावेगा परन्तु हां यदि अन्त समय तक भिन्न २ धर्मावलम्बियोंके तीन प्रश्नपत्र न प्राप्त हों तो एक धर्मके अधिकसे अधिक दो प्रश्नपत्र लिये जा सकेंगे। (६) एक प्रश्नपत्रमें तीनसे अधिक प्रश्न व एक प्रश्नमें एकसे अधिक प्रश्न न होना चाहिये। (७) प्रथम दिवसके प्रश्नकर्त्ता महाशयोंको दूसरे दिवस नवीन प्रश्न करनेका अधिकार न होगा। यदि उनको अपने प्रश्नोंके उत्तरोंसे सन्तोष न हो तो वे उसी दिन ५ बजेके भी-

तर उनपर पुनरपि शंकायें लिखकर दे सकते हैं जिनका कि उत्तर द्वितीय दिवस दिया जावेगा। (८) प्रश्नके लिखित उत्तर प्रश्नकर्त्ताओंको सभामें व्याख्यानके साथ सुनाकर देदिये जायंगे और यदि उनके प्रश्न नियम विरुद्ध होंगे तो जिस समय लिये जावेंगे उसी समय लौटादिये जावेंगे। (९) प्रश्नकर्त्ता महाशयोंको अपना माननीय धर्म वा नामादि स्पष्ट अवश्यमेव लिखना चाहिये। (१०) सभामें कोई अनुचित व असभ्य व्यवहार नहीं कर सकता और न सभापतिकी आज्ञा विना कोई बोल ही सकता है॥

नोट--समयानुसार प्रोग्राम बदला भी जासकेगा॥

प्रार्थी—घीसूलाल अजमेरा, मन्त्री—श्रीजैन कुमारसभा अजमेर,

आर्यसमाज अजमेरसे श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा छिपी हुई न थी। उसने उसके प्रकाशित आर्यमतलीलादि ट्रैक्ट पढ़े थे। सभाके कार्यक्रम, दौरोंकी रिपोर्ट, शंका समाधानके पत्र और कई आर्योंको जैन बनालेने आदिका विवरण भी आर्यसमाज अजमेरसे अप्रगट न था उसके कृष्णलाल गुप्त आदि सभासदोंने अपने आर्यमित्रमें प्रकाशित "नास्तिक मतके नमूने" आदि लेखोंका मुंह तोड़ उत्तर जैनमित्र आदि पत्रोंमें पढ़ा था। संक्षेपमें आर्यसमाज अजमेरको श्रीजैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाकी चढ़ी बढ़ी शक्ति सर्वथा प्रगट थी। उसको भय हुआ कि जब वही श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा अजमेरमें श्रीजैन कुमार सभाके वार्षिकोत्सवमें आती है तो वह अवश्य ही आर्यसमाजका खण्डन कर उसकी पोल सर्वसाधारणको दिखलावेगी जिससे कि बहुत सम्भव है कि पूर्व ही चंगुलमें आये हुए जैनकुमारोंकी भांति हमारे सत्यासत्य खोजी कई निष्पक्ष सभासद् आर्यसमाजको तिलाञ्जलि दे जांय। इस भयसे अपनेको रक्षित रखनेके अर्थ उसको बड़े सोच विचारके बाद एक चाल सूझी और वह यह थी कि प्रथमसे ही जैनियोंका ऊटपटांग खण्डन प्रारम्भ करदो जिससे कि उस खण्डनके खण्डन करनेमें ही जैन विद्वानोंका सारा समय व्यतीत हो जाय और उनको आर्यसमाजका खण्डन करनेके अर्थ समय ही न मिले। आर्यसमाज इस युक्तिको सोचकर अतिहर्षित हुआ और उसने इसीके अनुसार स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती आदि अपने विद्वानोंको बुलाकर जैनधर्मका जिस तिस प्रकार खण्डन निम्न विज्ञापन निकलवा कर प्रारम्भ करवा दिया।

* ओ३म् *

व्याख्यान ॥

सर्व साधारणको सूचित किया जाता है कि श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्द जी महाराजने कृपापूर्वक यहां ठहर कर नीचे लिखे अनुसार व्याख्यान देना स्वीकार किया है, अतः आप अपने इष्टमित्रों सहित अवश्य पधारकर लाभ उठावें

तारीख २७-६-१२ बृहस्पतिवार--सायंकालके ८ बजे,

विषय--"जैनियोंकी मुक्ति"

स्थान—आर्यसमाज भवन,

जयदेव शर्म्मा, मन्त्री–आर्यसमाज, अजमेर

सभाका वार्षिकोत्सव प्रारम्भ होनेके एकदिन पूर्व ही तारीख २७ जूनको उपर्युक्त विज्ञापनके अनुसार स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वतीका "जैनियोंकी मुक्ति" पर एक व्याख्यान हुआ जिसमें कि उन्होंने उसको विना समझे हुए ऊटपटांग खण्डन किया। व्याख्यान समाप्त हो जानेपर एक अल्प वयस्क जैन नवयुवकने शंका करनेकी आज्ञा चाही जो कि दी गयी। परन्तु उस नवयुवकका विना भलीभांति समाधान किये ही उसकी शंकाओंका समाधान कार्य्य वन्द करदिया गया जिसका कि बहुत बुरा प्रभाव सर्वसाधारणपर पड़ा।

शुक्रवार २८ जून १९१२ईस्वी।

प्रातःकाल श्री कुंवर दिग्विजयसिंह जी, श्री जैन सिद्धान्त पाठशाला मोरेना (ग्वालियर) के विद्यार्थी मक्खनलाल जी, विद्यार्थी देवकीनन्दन जी, विद्यार्थी उमरावसिंह जी, चन्द्रसेन जैन वैद्य आदि सज्जन इटावा की भजन मण्डली सहित मुम्बई जाने वाली डाकगाड़ीसे अजमेर पहुंचे। कुंवर साहब व मण्डलीका स्वागत बड़े धूम धामसे अजमेर में हुआ।

स्वामी दर्शनान्द जी सरस्वती के कल २७ जून के दिये हुये "जैनियोंकी मुक्ति" वाले व्याख्यानकी यथार्थ समीक्षा कर सर्व साधारण में उसके द्वारा फैले हुये अज्ञानको दूर करना निश्चित हुआ अतः निम्न विज्ञापन सभाकी ओर से प्रकाशित किया गया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

स्वामी दर्शनानंद जी के व्याख्यान की समीक्षा ।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवामें निवेदन है कि आज सायंकाल को ८ बजेसे स्थान गोदोंकी नशियां में आगरे दरवाजेके बाहर श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंहजी साहिब स्वामी दर्शनानंदजीके कलके दिये हुये जैनियोंकी मुक्ति विषयक व्याख्यानकी समीक्षा करेंगे ॥ अतः सर्व सज्जन महाशय उपर्युक्त समय पर अवश्यमेव पधारैं और व्याख्यान श्रवण कर लाभ उठावें । विज्ञेष्वलम् ॥

प्रार्थी—घीसूलाल अजमेरा मंत्री—श्री जैन कुमार सभा अजमेर । ता० २८ जून १९१२

—०—

सन्ध्याको आगरे दरवाजे के बाहर गोदोंकी नशियों के विस्तृत और सुसज्जित पौंडालमें सभाकी प्रथम बैठक हुई । भजन व मङ्गलाचरण होने के पश्चात् मास्टर पांचूलाल जी काला ने स्वागत कारिणी कमेटी के सभापतिकी हैसियतसे एक वक्तृता दी जिसमें कि आपने सर्व भाइयोंका स्वागत करते हुये जैन धर्मकी सच्ची प्रभावनाकी बड़ी आवश्यकता दिखलायी । सर्व सम्मतिसे राय बहादुर सेठ नेमीचन्द जी सोनीके सुपुत्र कुंवर टीकमचन्द जी उत्साही और धर्मात्मा सज्जन सभापति निश्चित हुये और आपने अपनी पुस्तकाकार छपी हुई वक्तृता पढ़ी जिसकी कि मुद्रित प्रतियां सभामें बांट दी गयीं । सभापतिका भाषण यह थाः—

॥ श्रीः ॥

श्री जैनकुमार सभा अजमेर के प्रथमाधिवेशन के समय सभापति श्रीयुत कुंवर टीकमचन्द्र जीका भाषण ।

(मंगलाचरण अकलङ्कस्तोत्रका ९ वां श्लोक)

मान्यवर महोदय ! आज अत्यन्त हर्षका समय है कि आप जैसे परोपकारी धर्मात्मा सज्जनोंने अजमेर नगर में पधार कर हम लोगोंको आभारी किया है, मैं इसके लिये आप लोगोंको हार्दिक धन्यवाद भेट करता हूं जो पद सभा मुझे देना चाहती है उसके योग्य यद्यपि मैं नहीं हूं तथापि आपके कहनेको टाल भी नहीं सकता, अतः मैं इस पदको सहर्ष स्वीकार करता हूं

और आशा करता हूं कि अगर मेरी ओरसे इस कार्यमें कोई त्रुटि रहेगी तो विद्वज्जन मुझे क्षमा करेंगे।

प्रिय सज्जन पुरुषो! इस स्थानपर हम लोगोंके उपस्थित होनेका मुख्य कारण यह है कि आपस के सम्मेलनसे धार्मिक तथा लौकिक उन्नति पर विचार किया जावे, इस प्रकार सभाओंका स्थान २ पर बार बार होना बड़ा लाभकारी है। मेलोंमें दूर दूरसे हजारों स्त्री पुरुष आते हैं और धार्मिक लाभ उठाते हैं। यद्यपि आजकल जैसा चाहिये वैसा मेलोंसे लाभ नहीं है क्योंकि जिस कार्यके अर्थ मेलोंकी स्थापना कीगई थी उसका परिवर्त्तन अन्यरूपसे होता जाता है और धर्मोन्नति व आत्मोन्नतिपर कोई विशेष विचार नहीं होता। इस बातपर विचार कर विद्वानोंने सभाओं द्वारा इस त्रुटिको दूर करनेकी चेष्टा की और वे इसमें फलीभूत हुए, आजकी सभा इस फलप्राप्तिका एक ख़ास नमूना है।

प्राचीनकालमें जाति व धर्मसम्बन्धी समस्त कार्य पंचायतों द्वारा ही सम्पादित होते थे, परन्तु कई एक कारणोंसे अब पंचायतें इस उन्नतिकी ओरसे मौनस्थ हैं। संसारका काम रुका नहीं रहता किसी न किसी सूरतमें अपना मार्ग बना ही लेता है। सभा सुसाइटियोंके स्थापन होनेसे जातिसुधारमें लाभ पहुंचा है पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि अनेक स्थानोंमें सभाओंकी स्थापना ही नहीं हुई और जहां कहीं हुई है उनमें से कई सभाओंने तो बातोंके सिवाय अधिक कार्य नहीं किया। जब मैं "तत्वप्रकाशिनी सभा इटावा" की ओर लक्ष्य डालता हूं तब मुझे खुशी होती है। यह सभा अवश्य कार्य करनेमें तत्पर है और जो कुछ कार्य अबतक किया वह प्रशंसनीय है। धन्य है उन महाशयोंको जो अपने गृहकार्योंसे छुट्टी पाकर इस प्रकार दूर देशान्तरोंमें धार्मिक उन्नतिके अर्थ प्रयत्नशील हैं।

पदार्थ विज्ञानकी प्रबल शिक्षा प्रचारके कारण भूमंडलके अनेक मतमतान्तरोंमें खलबली पड़ी हुई है, परन्तु इस खलबलीमें जैनधर्म दृढ़ताके साथ अटल किया जारहा है। जिन आंगल भाषाके उच्च वेत्ताओंने जैनधर्मका अध्ययन किया वह इस धर्मकी फ़िलासोफ़ी तथा तत्त्व विज्ञानपर मुग्ध हो गये। सत्यका ऐसा कुछ महात्म्य है कि वह असत्यतासे कितनी ही क्यों न दबाई जाय समय पाकर अपने आप प्रकाशमें आजाती है। अमेरिका इंगलैंड आदि देशोंमें जहां हिंसाका अत्यन्त प्रचार है अहिंसा धर्मकी शिक्षा

देनेको कौन उपस्थित हुआ था,, परन्तु विज्ञानकी शिक्षाके कारण Soul and matter की विवेचना हुई तो अपने आप आत्माका महत्व आत्मापर जम गया और अनेक पुरुषोंने मांसादि अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग अहिंसा धर्मको धारण किया, जो जैन धर्मका एक मुख्य अंग है। कुछ दिन हुए अंग्रेजीके लीडर नामक पत्रमें यह बात पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ कि अमेरिकाके प्रेसीडेन्टने एक नियम निकाला है कि जानवरोंके आपसमें युद्ध कराकर हास्यविनोद प्राप्त करना उन जानवरोंको अत्यन्त कष्टदाई है। इस प्रकार अबउस देशमें राजनियम द्वारा कारगृह वा आर्थिक दंडसे इस प्रकारका विनोद बंद किया गया। मांसाहारी पुरुषोंके चित्त में जो इस बारीक हिंसा से हानिका लक्ष्य हुआ है यही सत्यताकी विजय है। लंडनकी विजिटेरियन सोसाइटी शीघ्रतासे मांस भोजन का देशसे निष्काशन कर रही है, यह अहिंसा धर्मके प्रचारका दूसरा नमूना है। पत्रोंके पढ़नेसे ज्ञात हुआ है कि कुछ लंडन निवासी महाशयोंने जैनधर्मका उपदेश सुना और वे जैनधर्मानुयायी हुये। कहनेका सारांश यह है कि सर्व जीव हितकारी जैनधर्मके तत्वोंकी शिक्षा काप्रचार वैज्ञानिक देशोंमें पत्रादि द्वारा किया जाय तो बिना कठिनताके सफलता प्राप्त होना सम्भव है। यह कार्य उन महाशयों से हो सकता है जो इंगलिश भाषाके साथ २ धर्मकी तात्विक शिक्षाके भी जानकार हैं॥

यहांके कतिपय उत्साही योग्य कुमारोंने एक सालसे "जैनकुमार" नामक सभा स्थापित कर रक्खी है जिसके द्वारा अपनी उन्नतिका मार्ग बढ़ा रहे हैं आज उक्त जैनकुमार सभाका वार्षिकोत्सव है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि जैसी कुमारसभा यहां है वैसी जैनजातिमें प्रायः हर जगह हों, क्योंकि बाल्यावस्थासे जो विचार स्थिर होते हैं वे भविष्यमें बड़े लाभकारी होते हैं।

सभा सोसायटीके मेम्बर होने तथा उनमें योग देनेसे अतुल लाभ होते हैं; वाणी की चतुरता मालूमातका कोष, कामका उत्साह, वात्सल्यता, देशहित, धर्मकी दृढ़ता, विचारोंकी तथा शुद्धाचरणोंकी उच्चता आदि अनेक महत् गुण केवल एक सभा सत्संगसे प्राप्त होते हैं जिनकी नवयुवकोंके लिये मुख्य करके अत्यन्त आवश्यकता है।

वृटिश सुराज्यमें हर मनुष्यको अपनी उन्नति करनेकी स्वतंत्रता है, इस स्वतन्त्रता में भारतकी प्रायः सबही समाज उन्नति के मैदानमें आरूढ़ हैं।

ऐसे समयमें जैनियोंने भी कुछ उद्योग किया है; परन्तु अन्य कई समाजोंकी अपेक्षा जैनजाति अभी उन्नति के मार्ग से कोसों दूर है, इसका मुख्य कारण यह है कि विद्याकी उन्नति पर हर प्रकार की उन्नति निर्भर है जिसकी अभी समाजमें बड़ी आवश्यकता है। धन्य है सरकार गवर्नमेन्टको कि जिसके सुप्रबंधसे स्थान २ पर स्कूल कालेजोंकी स्थापना है, परन्तु समाजका कर्तव्य है कि जातीय पाठशालाओं द्वारा धार्मिक, लौकिक वा प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार अधिकताके साथ करे और फिर अपनी सन्तानोंको सरकारी कालिजों में उच्चकक्षाकी शिक्षा दिलावे। क्या अच्छा हो, अगर पञ्चायत अपने सन्तानों के लिये बलात् शिक्षाका नियम पास करे, क्योंकि इस प्रकारका बिल भारत सरकार की कौन्सिलमें पास होनेको उपस्थित है यह एक दिन अवश्य पास होगा। यदि हम लोग पहिलेही से इसको कार्यमें लावें तो अति उत्तम हो। अगर सबसे प्रथम किसी स्थानकी पंचायत इस प्रकारके नियम प्रचारमें आरूढ़ हो तो अन्य समाज के लिये अनुकरणीय हो सकता है।

अब मैं भारत सम्राट् श्रीमान् पञ्चमजार्ज तथा श्रीमती महारानी मेरी साहिबा व यहां के सुयोग्य शासनकर्ताओं की सेवा में धन्यवाद भेंट करता हूं और यहां पर उपस्थित सज्जनोंका ध्यान उपरोक्त विषयों पर आकर्षित करता हुआ अपने भाषण को समाप्त करता हूं और आशा रखता हूं कि आप धार्मिक तथा लौकिक उन्नतिके अर्थ उत्तम २ विचार प्रकट करेंगे तथा उनको वर्ताव में लानेकी चेष्टा भी करेंगे, यही मेरी आंतरिक अभिलाषा है॥

इति॥

सभापतिका भाषण समाप्तहोते ही कुंवर साहबका परिचय सर्व साधारण को कराया गया और आप तालियों की गड़गड़ाहट व हर्ष ध्वनि के साथ स्वामी दर्शनानन्द जी के जैनियों के मोक्ष विषयक व्याख्यान की समीक्षा करने को खड़े हुये। आपने अपने व्याख्यानमें प्रथम ही जीव और उस के बन्ध की सिद्धिकरते हुए मोक्ष की विस्तृत व्याख्या की और उन सर्व आक्षेपों का यथोचित उत्तर दिया जो कि २७ जून को स्वामी जी ने उस पर किये थे। कुंवर साहब के व्याख्यान में ही अजमेर के आर्य्य समाजी भाइयों ने अपना निम्न विज्ञापन अर्थात्—

॥ ओ३म् ॥

कुंवर दिग्विजयसिंहकी समीक्षाका खण्डन ॥

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि कल ता० २९—६—१२ शनिवारको सायङ्काल के ६॥ बजे आर्य्य समाज भवन कैसरगंजमें श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, कुंवर दिग्विजय सिंहजी के आजके व्याख्यानका खंडन करेंगे कृपा कर अवश्य पधारें ॥

ता० २८—६—१२

जयदेव शर्म्मा मन्त्री
आर्य्य समाज अजमेर

बांटना प्रारम्भ कर दिया था जिससे कि हमारे मुख भाई भली भांति समझ सक्ते हैं कि उनको सत्यासत्य से कुछ प्रयोजन नहीं केवल उनके सिद्धान्त के विरुद्ध जो कुछ कहा जाय उस पर जिस तिस प्रकार कुछ कहकर पवलिक को यह दिखला देना मात्र इष्ट है कि हमने उसका खण्डन कर दिया। कुंवर साहब के व्याख्यान समाप्त हो जाने पर द्वितीय दिवसके कार्य्य क्रमकी सूचना दे जय जयकार ध्वनि से सभा समाप्त हुई।

शनिवार २९ जून १९१२ ईस्वी।

प्रातः काल से मध्यान्ह तक श्री जी की रथ यात्रा और नगर कीर्तन बड़े साज सामान और धूम धामसे हुआ। श्रीजी के रथके आगे कई भजन मण्डलियां कुरीति निवारक और जैनतत्त्व प्रदर्शक भजन व्याख्या और ताल स्वर से गाकर सर्व साधारण पर बड़ा प्रभाव डालती थीं। आज प्रातःकाल की डाक गाड़ी से श्रीमान् स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी पंडित गोपालदासजी वरैय्या और न्यायाचार्य्य पंडित माणिकचन्द जी पधारे और आप लोगों से कुछ पूर्व बाबू अर्जुन लाल जी सेठी बी० ए० आदि।

कुछ समय हुआ कि स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती ने अपने "जैनी पंडितों से प्रश्न" शीर्षक उर्दू पैम्फलटमें बीस प्रश्न जैन विद्वानों से किये थे जिस का कि उत्तर श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके तृतीय वार्षिकोत्सव पर ता० ७ अप्रैल को कुंवर दिग्विजय सिंह जी ने दिया था। वह प्रश्नोत्तर बाद में श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा की ओर से पैम्फलट रूप में तारीख १ जून को प्रकाशित किये गये जिनपर कि स्वामीजी महाराजने "जैनी पण्डितों के प्रश्नोत्तरों की समीक्षा" शीर्षक समीक्षा लिखने का कष्ट किया और श्रीजैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके "सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा,, नामक ट्रैक्ट नम्बर १२ के प्रारम्भ के कुछ भाग को लेकर "जैनमत समीक्षा,, नामक छोटासा ट्रैक्ट उस के

खगडन रूपमें लिखा। उक्त दोनों उनके ट्रैक्टोंका उत्तर देना उचित समझा गया अतः सभाकी ओर से निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

स्वामी दर्शनानन्द जी की "समीक्षा" की समालोचना

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवामें निवेदन है कि आज सायंकाल के ८ बजेसे स्थान गोदोंकी नशियां में आगरे दरवाज़े के बाहिर श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंह जी साहिब स्वामी दर्शनानन्द जी की "जैनी पंडितोंके प्रश्नोत्तरों की समीक्षा,, शीर्षक पुस्तककी समालोचना करेंगे तथा उनकी "जैन मत समीक्षा', नामक पुस्तककी भी समालोचना होवेगी ॥ अतः सर्व सज्जन महाशय उपरोक्त समय पर अवश्य मेव पधारैं और व्याख्यान श्रवण कर लाभ उठावें विज्ञेष्वलम् ॥

प्रार्थी:—

अजमेर
ता० २९ जून १९१२

घीसूलाल अजमेरा
मंत्री-श्रीजैनकुमार सभा,

सन्ध्याको सभाके पैगडाल में सभाकी द्वितीय बैठक हुई। भजन व मङ्गलाचरण समाप्त होने पर कुंवर साहब स्वामी दर्शनानन्द जी के "जैनीपण्डितोंके प्रश्नोत्तरों की समीक्षा" शीर्षक ट्रैक्ट की समालोचना करने को उठे और आपने उस समीक्षाका भली भांति शान्ति पूर्वक खगडन और अपने दिये हुये उत्तरों को प्रमाण और युक्तियों से मगडन किया। कुंवर साहबका यह खगडन मगडन "समीक्षा वीक्षण" के नामसे शीघ्र ही प्रकाशित होगा। पूर्व नियमानुसार ही आर्य्यसमाजी भाइयों ने कुंवर साहब के व्याख्यान में ही अपना निम्न विज्ञापन बांटा।

॥ ओ३म् ॥

कुंवर दिग्विजयसिंहजी की समालोचना की प्रत्यालोचना ॥

सर्व साधारणको सूचित किया जाता है कि कल ता० ३०—६—१२ रविवार

को सायङ्कालके ६॥ बजे आर्य्यसमाज भवन कैसरगंज में श्रीमान् स्वामीदर्शनानन्दजी महाराज, कुंवर दिग्विजयसिंहजी के आक्षेप व्याख्यानका खंडन करेंगे। कृपा कर अवश्य पधारें ॥

ता० २९—६—१२ { जयदेव शर्म्मा मन्त्री— आर्य्यसमाज, अजमेर ॥

स्वामी दर्शनानन्दजी ने अपने "जैनी पण्डितों के प्रश्नोत्तरों की समीक्षा" शीर्षक ट्रैक्ट के अन्तमें यह चेलेञ्ज छपवा रक्खा था।

चेलेञ्ज।

हमने जैनी पण्डितोंसे २० प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर किसी जैनी पण्डित ने तो नहीं दिया, परन्तु जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा ने श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंह जी बीधूपुरा इटावा द्वारा उनका उत्तर दिलाया। कुंवर दिग्विजयसिंहजी जैनधर्मके प्रतिष्ठित विद्वान् न होनेके कारण सम्भव है कि उनके दिये यह उत्तर जैनियोंके लिये प्रामाणिक अथवा सर्वमान्य न हों, परन्तु जैनतत्त्वप्रकाशिनीसभा इटावा द्वारा प्रकाशित किये जानेसे यह उत्तर प्रामाणिक भी समझे जासकते हैं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है वह सत्यासत्य की परीक्षा करे कि जिससे असत्य को त्याग सत्यको ग्रहण करता हुआ वह अपने जीवन को सत्याश्रित कर सफल करसके। हम हिन्दुस्तानके समस्त जैनधर्मावलम्बी विद्वानोंको चेलेञ्ज करते हैं कि यदि वे कुंवर साहिब के उत्तरों को, जो हमारी समझ में असत्य और भ्रममूलक हैं, सत्य समझते हों तो सत्य सिद्ध करने के लिये शास्त्रार्थ करें। यदि इन उत्तरों को असत्य और अप्रामाणिक समझते हों तो ऐसा किसी पत्र द्वारा प्रकाशित करदें और हमारे किये प्रश्नोंका सत्य उत्तर प्रदान करें। इस शास्त्रार्थकी सूचना शास्त्रार्थ की तिथिसे एक मास पूर्व "दयानन्द वेदप्रचारक मिशन लाहौर" के पते से मेरे पास पहुंचनी चाहिये, इस कारण कि किसीको असुविधा नहो। शास्त्रार्थ देहली, आगरा, अजमेरमेंसे किसी स्थानपर हो सकता है। जैन विद्वानों का इन उत्तरोंको सत्य सिद्ध करना और हमारा पक्ष उन को असत्य सिद्ध करना होगा और जो आक्षेप जैनधर्मावलम्बी विद्वान् वैदिक धर्मपर करेंगे, उनका उत्तर हम देंगे ॥

वैदिकधर्मका सेवक—
दर्शनानन्द सरस्वती,

श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे स्वामी जीके इस चेलेञ्जपर निम्न मुद्रित चेलेञ्ज कुंवर साहबकी समालोचना समाप्त होते ही बांट दिया गया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

आर्य्यसमाजी स्वामी दर्शनानन्दजीको उनके चेलेञ्जपर चेलेञ्ज॥

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा कुंवर दिग्विजयसिंहजीके आपके प्रश्नोंपर दिये हुये उत्तरोंको अक्षर प्रत्यक्षर सत्य समझती है और उसपर शास्त्रार्थ करनेके लिये सर्वथा उद्यत है यदि आप उन्हें असत्य और भ्रममूलक समझते हों तो हम आपके चेलेञ्जानुसार शास्त्रार्थ करनेको अभी अजमेरमें ही ता० १ जौलाई १९१२ ई० तक (जब तक कि हम लोग यहां ठहरेंगे) उद्यत हैं। यदि आप इस समय असमर्थ हों तो आपके लेखानुसार ही हम आजसे एक मास पश्चात् इटावा या मुरैनामें सहर्ष शास्त्रार्थके लिये सन्नद्ध हैं। पूर्ण आशा तथा दृढ़ विश्वास है कि आप शास्त्रार्थसे पीछे न हटकर हम लोगोंको अनुगृहीत करेंगे। विज्ञेष्वलम्।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा।

तारीख २९ जून १९१२

———:o:———

"सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा" वादिगजकेसरी जीकी लिखी हुयी है अतः उसके खण्डनमें लिखी हुयी स्वामीजीके "जैन मत समीक्षा" नामक ट्रैक्टकी समालोचना करनेका भार वादिगजकेसरी जीके एक छोटे विद्यार्थी देवकी नन्दनजीने अपने ऊपर लिया और बड़ी योग्यतासे स्वामीजीकी समीक्षाका खण्डन और मीमांसामें प्रतिपादित विषयका मण्डन किया। यह खण्डन मण्डन शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित होगा। विद्यार्थी देवकीनन्दनजी की समालोचना समाप्त होते ही श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे निम्न चेलेञ्जका मुद्रित विज्ञापन बांट दिया गया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

विज्ञापन।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंको सूचित किया जाता है कि स्वामी द-

र्शनानन्दजीने हमारे सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा नामक ट्रेक्ट नं० १२ के प्रारम्भके कुछ भागको लेकर जैनमतसमीक्षा नामक पुस्तकमें विना समझे ऊटपटांग खंडन किया है। अतः हम उपर्युक्त स्वामीजीको चैलेञ्ज देते हैं कि यदि आप को अपने खंडनपर अभिमान हो तो आप इस विषयमें यहां अभी अजमेर में ही ता० १ जुलाई सन् १९१२ ई० तक (जब तक कि हम यहां ठहरेंगे) शास्त्रार्थ करलें। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आपकी असमर्थता समझी जावेगी।

चन्द्रसेन जैन वैद्य मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा।

ता० २९ ६-१९१२

———:०:———

उपर्युक्त कार्य्यवाहीके पश्चात् आजकी सभाका कार्य्य सानन्द जय जयकार ध्वनिसे समाप्त हुआ।

रविवार ३० जून १९१२ ईस्वी।

कल रातको जो दो चैलेञ्ज (एक स्वामी दर्शनानन्द जी के चैलेञ्जपर चैलेञ्ज और दूसरा अपनी ओरसे स्वामी दर्शनानन्द जी को चैलेञ्ज) श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे स्वामी दर्शनानन्द जीको दिये गये थे उनके उत्तरमें आज प्रातःकाल ८॥ बजेके लगभग स्वामी जी की ओरसे निम्न विज्ञापन प्राप्त हुआ।

॥ ओ३म् ॥

जैनियोंका चैलेञ्ज मंजूर।

जैन सभाको विदित हो कि जहां कहीं वह बुलाया चाहे वहां मैं शास्त्रार्थ करनेके लिये तय्यार हूं। कृपा कर स्थान, समय, विषय और प्रबन्धके लिये मध्यस्थ नियत करके सूचना देवें।

ता० ३०—६—१२
प्रातःकाल के ७ बजे

दर्शनानन्द,
अजमेर

———:०:———

स्वामीजी के इस विज्ञापन का निम्न लिखित उत्तर अर्थात्—

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

शास्त्रार्थ की स्वीकारता पर हर्ष।

सर्व-साधारण सज्जन सहोदयोंको विदित हो कि आर्य्यसमाजी स्वामी

दर्शनानन्दजीके चेलेञ्जानुसार हमको शास्त्रार्थ करना मंजूर है और उनकी जिज्ञासानुसार प्रगट करते हैं कि यह शास्त्रार्थ स्थान गोदोंकी नसियोंमें आज ही दिनके २ वजेसे ५ वजे तक विषय "जगत्का कर्त्ता ईश्वर है या नहीं" अथवा हमारे पूर्व प्रकाशित विषयपर होगा। और प्रवंधके लिये मध्यस्थ पुलिस मौजूद ही है।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा

अजमेर ता० ३० जून १९१२ प्रातःकाल

——:o:——

सबसे प्रथम पत्र द्वारा स्वामीजीको भेज दिया गया और पश्चात् यही छपाकर सर्वसाधारणमें वितीर्ण कर दिया गया। इसके उत्तरमें बारह वजेके लगभग स्वामी जीका निम्न पत्र अर्थात्:—

॥ ओ३म् ॥ नं० ३१३

श्रीमन्—नमस्ते !

आपका पत्र ता० ३० जून १९१२ का अभी ९॥ वजे प्राप्त हुआ उत्तर में निवेदन है कि वैदिक धर्मावलम्बियोंके लिये इससे अधिक प्रसन्नताकी बात और क्या हो सक्ती है कि मत मतान्तरोंके लोग सभ्यता पूर्वक पारस्परिक प्रेमभावसे लक्षण प्रमाणोंकी दार्शनिक मर्यादानुसार स्वमन्तव्यामन्तव्य पर विचार करके सत्यके ग्रहण और असत्य के त्याग करनेमें तत्पर हों। दो से ५ वजे तक गोदों की नसियां नामक स्थान में नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना स्वीकार है तदनुसार उपस्थित रहूंगा। कृपया एक ऐसे प्रधानका प्रबंध करें जो नियमादि पालन करानेका यथावत् प्रबंध कर सके।

भवदीय-दर्शनानन्द सरस्वती

३०। ६। १२। ११ वजे प्रातः

——:o:——

और एक वजेके लग भग आर्य्यसमाजकी ओरसे निम्न विज्ञापन प्राप्त हुआ।

॥ ओ३म् ॥

जैनियों से शास्त्रार्थ।

सर्व साधारणको सूचना दीजाती है कि आज तारीख ३०-६-१२ ई० को दुपहरके २ वजेसे गोदोंकी नसियांमें जैनियोंकी जिज्ञासानुसार श्रीमान् स्वामी

दर्शनानन्द जी शास्त्रार्थके लिये पधारेंगे ।

जयदेव शर्मा मंत्री आर्य्यसमाज अजमेर

ता० ३०-६-१२ समय १२ बजे, ।

---:०:---

दो पहरकी सभाका प्रारम्भ ठीक समयपर हुआ और भजन व मङ्गलाचरण होने के पश्चात् वादिगजकेसरी जी की श्री जैन सिद्धान्त पाठशाला के विद्यार्थी मक्खन लाल जी ने स्वामी दर्शनानन्द जी के उस व्याख्यानका जो कि उन्होंने कल २९ जूनकी सन्ध्याको कुंवर साहबके २८ जूनके रात्रिकी समीक्षाके खण्डनमें दिया था भली भांति युक्ति और प्रमाणों से खण्डन किया। विद्यार्थी मक्खनलाल जी ने २८ जून की रात्रिको ही (जब कि वह आर्य्यसमाज भवनमें आर्य्य विद्वानोंके व्याख्यानोंके नोट लेने गये थे) स्वामी जीका खण्डन समाप्त हो जाने पर उसपर शङ्का समाधानकर कुंवर साहब की समीक्षा सत्य सिद्ध करनेकी आज्ञा मांगी थी पर हमारे आर्य्यसमाजी भाई तो २७ जूनके शङ्का समाधानसे सीखे हुये थे अतः उन्होंने किसी प्रकार आज्ञा न दी ॥

स्वामी दर्शनानन्द जी स्वामी सर्वदानन्द जी के साथ १॥ बजे के लग भग सभामें पधारे और उनके पीछे ही सैकड़ों आर्य्यसमाजी भाई । स्वामी जी के लिये अपने प्लेटफार्म के सामने ही दूसरा प्लेटफार्म बहुत बढ़िया बना दिया गया और उसपर दोनों स्वामी जीके लिये दो कुर्सियां व उनकी ढेर की ढेर पुस्तकें (जो कि वह अपने साथ लाये थे) रख दी गयीं । सभाका पैण्डाल आज खचाखच भरा हुआ था और उसमें कई हज़ार आदमी थे। सभा के सभापति थे सेठ ताराचन्द जी रईस नसीराबाद । स्वामी जी की इच्छानुसार ही शास्त्रार्थ मौखिक रक्खा गया और पांच पांच मिनिट दोनों ओरके वक्ताओं को बोलनेका समय निश्चित हुआ । यद्यपि स्वामी जी की इच्छा यह थी कि शास्त्रार्थ तो मौखिक ही होय परन्तु दोनों ओरके तीन तीन रिपोर्टर उसको अक्षर प्रत्यक्षर लिखते जांय और एक एक वक्ताके बोल चुकनेपर उन सबके लेख सुनकर और जांचकर दोनों पक्षके हस्ताक्षर होजांय पर इस पर इस कारण इन्कार कर दिया गया कि यहांके रिपोर्टर लोग संक्षिप्तलिपिप्रणाली में दक्ष नहीं है अतः वह दोनों वक्ताओंके शब्दोंको अक्षर प्रत्यक्षर नहीं लिख सकते और एक भी शब्द या अक्षर के इधर उधर हो

जाने से अर्थका विपर्य्यय हो सकता है। यदि प्रत्येक रिपोर्टरके लेखपर जांच जांचकर हस्ताक्षर किये जांय तो सारा पब्लिकका समय यों ही नष्ट हो जायगा। इसपर दोनों ओरसे यह निश्चय हुआ कि अपने अपने रिपोर्टर लिखें। शास्त्रार्थका बिषय यह था कि ईश्वर इस जगतका कर्ता है या नहीं। श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे श्रीमान् स्याद्वादवारिधि वादि गज केसरी पंडित गोपालदास जी बरैया बोलने वाले थे और उधरसे स्वयम् स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती। शास्त्रार्थका प्रारम्भ ठीक दो बजे दिनके हुआ।

श्रीमान् स्याद्वादवारिधि वादि गज केसरी पंडित गोपाल दास जी बरैया द्वारा श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा और आर्य्यसमाजी स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती में ईश्वर के सृष्टि कर्तृत्व के विषय में जो मौखिक शास्त्रार्थ हुआ वह इस रिपोर्ट के अन्त में परिशिष्ट नम्बर "क,, में प्रकाशित किया जाता है।

शास्त्रार्थ समाप्त हो जाने पर आर्य्य समाज की ओर से बाबू मिट्ठनलाल जी बकील और जैन समाज की ओर से चन्द्रसेन जैन वैद्यने सम्राट पंचम जार्ज व वृटिश गवर्नमेंटको (जिन के निष्कण्टक राज्य में यह शास्त्रार्थ इस प्रकार शान्ति और प्रेम से समाप्त हुआ) धन्यवाद दिया और अन्त में सभापति की सर्व उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद देने आदि की उपसंहार संक्षिप्त वक्तृता होकर मानन्द सभा समाप्त हुयी।

आज रात्रिको पंडित दुर्गादत्त जी शास्त्री जैन भूतपूर्व उपदेशक आर्य्य समाज का "जैन धर्म्म और वैदिक धर्म्म की तुलना तथा दयानन्दकृत वेद भाष्योंकी पोल,, पर व्याख्यान होना निश्चित हुआ था अतः निम्न विज्ञापन काशित किया गया।

* वन्दे जिनवरम् *

जैन धर्म्म और वैदिक धर्म्मकी तुलना तथा दयानंद कृत वेद भाष्यों की पोल।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवा में निवेदन है कि आज ता० ३१ ६। १९१२ ई० रविवार सायंकाल को श्रीमान् पण्डित दुर्गादत्त जी शास्त्री जैन भूतपूर्व उपदेशक आर्य्य समाज का "जैनधर्म्म और वैदिक धर्म्म की तुलना तथा आर्य्य वेदों की पोल,, पर स्थान गोदोंकी नसियां में व्याख्यान होवे-

वा। कृपया सर्व सज्जन अवश्यमेव पधारकर लाभ उठावें। किमधिकम्।

प्रार्थी:—

घीसूलाल अजमेरा मंत्री—श्री जैन कुमार सभा,

अजमेर ता० ३० जून १९१२

पंडित दुर्गादत्त जी से हमारे पाठक अपरिचित न होंगे। आप पंजाब प्रदेशान्तरगत रोहतक जिले के महिम ग्राम के निवासी पंडित श्रीधर जीके पुत्र और आर्य समाज के भूतपूर्व सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पंडित गणपति जी शर्मा के निकटस्थ बन्धु गौड़ ब्राह्मण हैं। आपने आर्य समाज में कई वर्षों तक उसके तत्वों का मनन और उपदेशकी का काम किया पर जब आप को उससे सन्तोष और शान्ति की प्राप्ति न हुई तब आपने सहर्ष जैनधर्म ग्रहण किया और वैशाख कृष्णा द्वितीया वीर निर्वाणाब्द २४३८ के बारहवें अङ्क के जैन मित्र पत्र में बारहवें पृष्टपर उसकी निम्न सूचना प्रकाशित करायी।

मैंने जैनधर्मकी शरण क्यों ली।

उद्योगेन सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्ति॥

मनुष्य संसार में पुरुषार्थ से कठिन से कठिन कार्य कर सकता है। यहां तक कि यदि वह खोज करे तो आत्मिक शान्ति या उन्नति भी कर सकता है मुझको धार्मिक बातों से प्रेम विद्यार्थी अवस्था से ही था और वास्तविक अर्थ को पाना चाहता था। लेकिन खोज करने पर भी वह वास्तविक अर्थ उपलब्ध न होने से मैंने आर्यसमाजिक ग्रन्थों को देखा और मैं उपदेशक बन गया। भिन्न प्रदेशों में ३ वर्ष तक उपदेशक पदपर रहा, लेकिन इतने काल आर्य समाज में रहने पर भी मेरी आत्मा को संतुष्टि न हुई। अतः मैं सौभाग्य वश स्यालकोट के जिले में पिसरूर दो मास पर्यन्त उपदेशार्थ ठहरा। इस रास्ते में मुझको जैनी भाइयों से मिलाप हो गया और इन लोगों ने मुझे जैनधर्म सम्बन्धी पुस्तकें अवलोकनार्थ दीं। मैंने अच्छी तरह से उन्हें पढ़ीं और पुस्तक देखने के अनन्तर मुझे मेरी आत्मा ने साक्षी दी कि मैं यदि सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकता हूं। तो एक जैनधर्म में ही कर सकता हूं। इस विषय में मैं अपने पिसरूर के जैनी भाईयों का अत्यन्त उपकार मानता हूं और वह धन्यवाद के योग्य हैं।

मुझे आर्यधर्म में कौन २ सन्देह थे उनका वर्णन मैं दूसरे समय में भेजूंगा।

आपका हितैषीः--

दुर्गादत्त उपदेशक जैन भूतपूर्व आर्यसमाज।

पिसरूर [स्यालकोट] ता० ३१—३—१२

आपके इस सूचनाके प्रकाशित होने पर "आर्य्य मित्र" के तारीख़ ८ मई सन् १९१२ ईस्वीके अङ्कमें इन्द्रपाल वर्म्मा मन्त्रीने आपसे कुछ प्रश्न पूछे जिस के कि उत्तरमें आपकी ओर से द्वितीय आषाढ़ कृष्ण द्वितीया वीर निर्वाणाब्द २४३८ के अट्ठारहवें अङ्क के "जैन मित्र" पत्र में तीसरे पृष्ठपर निम्न घोषणा प्रकाशित हुई।

आर्यसमाज को घोषणा।

आर्यमित्र में मेरे विषय में कुछ झूठ तथा अयुक्त बातोंके साथ कुछ प्रश्नादि भी किये हैं। उन्होंने पूछा है कि आपने जैन धर्म क्यों ग्रहण किया है, और आर्यधर्म किस कारण हेय समझा है। इत्यादि महाशय जी, मुझ को यह पूर्ण विश्वास है कि वेदोंमें मांसादि की स्पष्ट आज्ञा है, मैं उनको निरुक्तादि कोषोंके द्वारा करके बतला सकता हूं। दूसरे वेद ईश्वरोक्त नहीं हो सकते। यथा पुनरुक्ति दोष, वदतोव्याघात् दोषों से रहित वेद नहीं है मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूं कि उपनिषद् प्रश्नोपनिषद् और सांख्यादि दर्शनके कर्त्ता ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानते। आपने जो यह लिखा है कि, आप किस समाजके सभासद् रहे हैं, सो आपकी नितान्त भूल है। क्योंकि इस समयभी जितने आर्य पण्डित आर्यसमाज में कार्य कर रहे हैं, वह किसी खास समाज के सभासद् नहीं कहला सकते इसीलिये आपका यह प्रश्न व्यर्थ समझ के कुछ उत्तर देने की आवश्यकता नहीं समझता। महाशय जी, मैंने आर्यधर्मको परित्याग करके जैनधर्म को ग्रहण क्यों किया, इस विषय के आरम्भ करनेको मैं तय्यार हूं। यदि आपके अन्दर साहस है तो आप मैदान में निकलें। मैं जैनमित्रमें उपनिषद् जो कि स्वामी दयानन्द जी ने प्रमाणिक मानी हैं और दर्शनादि शास्त्रोंसे भी यह सिद्ध करने को लेख लिखना आरम्भ करूंगा कि वे आचार्य ईश्वर को जगत् कर्त्ता नहीं मानते थे। फिर दूसरा द्रव्यों की विवेचनापर होगा, वैशेषिककार और जैनधर्म का मुकाबला, पुनर मोक्ष नित्य

है या अनित्य है इस विषय पर लेख होगा इत्यादि। यदि आप लोग चाहते हैं कि आर्यधर्म की रक्षा हो तो आपका कर्तव्य है कि अपने आर्यमित्रमें हमारे लेखका उत्तर देना आरम्भ करें। यह आपको प्रथम ही घोषणा के रूप में जैनमित्र में प्रकाशित किया जाता है॥

दुर्गादत्त शर्म्मा उपदेशक जैन
भूतपूर्व आर्यसमाज।

सन्ध्याको निश्चित समयपर सभा का कार्य्य पुनः प्रारम्भ हुआ। भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चात् पंडित दुर्गादत्त जी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। आपने अपने सुरीले और मधुर व्याख्यानमें जैन धर्म्मके विषयमें अज्ञानताके कारण प्रचलित नास्तिक, वाममार्गी और बौद्ध धर्म्म की शाखा होने आदि किम्बदन्तियोंका निराकरणकर यह दिखलाया कि सुख और शान्तिकी प्राप्ति जैन धर्म्मसे ही हो सकती है। वेदों के विषयमें आपने कहा कि स्वामी दयानन्दजीके भाष्यानुसार वह ईश्वर कृत कदापि सिद्ध नहीं होते और न उन से सुख शान्ति ही मिल सकती है; उनमें सिवाय भेड़ बकरियों व मामूली संसारी बातोंके और कुछ नहीं। अनेक अवतरणोंसे वेदोंकी पोल दिखलाते हुये आपने यह कहा कि वेदों की पोल मैं कहां तक दिखलाऊं उसमें तो निरी पोल ही पोल भरी है। आर्य्यसमाज के उत्साह और कार्य्यकी प्रशंसा करते हुये आपने जैन भाइयोंसे सर्व जीवों के कल्याणार्थ जैन धर्म्मके सर्व को प्रकाशित करनेका अनुरोध कर निज व्याख्यान समाप्त किया। पंडितजी के आसन ग्रहण कर लेने पर चन्द्रसेन जैन वैद्यने स्वामीजीके यजुर्वेद भाष्यसे अनेक अवतरण पढ़कर सुनाये जिनसे कि वेदोंकी निरर्थकता और उनका ईश्वर कृत न होना सर्वथा झलकता था। इसके पश्चात् कुंवर दिग्विजयसिंहजी ने करताल ध्वनिके मध्य खड़े होकर अनेक अनूठी युक्तियों से वेदोंका ईश्वर कृत न होना और जैन धर्म्मका ही ईश्वरका उपदेश होना भली भांति सिद्ध किया। भजन व मङ्गल होनेके पश्चात् जयजयकार ध्वनिसे सभा समाप्त हुई।

चन्द्रवार १ जुलाई १९१२ ईस्वी।

मध्यान्हको भजन व मङ्गलाचरण होने के पश्चात् सभाका कार्य्य पुनः प्रारम्भ हुआ। आज सभामें स्त्रियोंके विशेष अनुरोधसे उनको भी पर्देके यथोचित प्रबन्धमें स्थान दिया गया था और उन के अर्थ स्पेशल रीतिपर च-

न्द्रसेन जी जैन वैद्यका कुरीति निवारण और स्त्री शिक्षापर बीच बीचमें भजनोंके साथ बड़ा सुन्दर व्याख्यान हुआ। इस के पश्चात् सर्व लोगोंके अनुरोधसे कुंवर दिग्विजय सिंह जी खड़े हुए और आपने जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना और उसकी आवश्यकतापर बड़ी गम्भीरता और मार्मिकतासे प्रभावशाली विवेचन किया। भजन होनेके पश्चात् सभा सानन्द समाप्त हुई।

आज रात्रिको श्रीमान् स्याद्वाद् वारिधि वादि गजकेसरी पंडित गोपालदास जी वरैय्याका व्याख्यान होना निश्चित हुआ था तदनुसार निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

आइये ! पधारिये !! लाभ उठाइये !!!

एक अपूर्व व्याख्यान।

आज ता० १ जौलाई सन् १९१२ ई० को स्थान गोदोंकी नसियांमें श्रीमान् स्याद्वाद वारिधि वादिगज केसरी पं० गोपालदासजी वरैय्याका जैन सिद्धान्त (Jain Philosophy) पर सायङ्कालके ८ बजेसे एक अद्वितीय सुललित व्याख्यान होगा। अतःसर्व सज्जन महोदयगण अवश्यमेव पधारकर और व्याख्यान श्रवण कर धर्म लाभ उठावें।

प्रार्थी—घीसूलाल अजमेरा मंत्री

श्री जैन कुमार सभा अजमेर ता० १ जुलाई १९१२

—:o:—

कल तारीख ३० जूनके मध्यान्हको ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वके विषयमें जो मौखिक शास्त्रार्थ वादिगज केसरी द्वारा श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा और स्वामी दर्शनानन्द जीसे जैन धर्मकी बड़ी सफलता और बड़ी प्रभावनासे हुआ था और उसका जो उत्तम प्रभाव सर्व साधारण पर पड़ा था वह स्वामीजी और आर्य्यसमाजियोंको असह्य हुआ। उन्होंने उस प्रभावको नष्ट करने और अपने खोये हुये मानको पुनः प्राप्त करने के अर्थ एक प्रपंच (सर्व साधारण के आंखों में धूल डालनेको) रचा। स्वामीजीने पंडित दुर्गादत्तजी को एक मनुष्य द्वारा राय बहादुर सेठ नेमिचन्द जी सोनीके रङ्ग महलसे अपने मिलनेके अर्थ आर्य्यसमाज भवनमें बुलवा भेजा और वहांपर उनको

जिस तिस प्रकार जैन धर्म्म परित्याग शीर्षक एक विज्ञापन निकालनेको बाध्य किया। अनेक दिवसोंके पश्चात् पंडित दुर्गादत्तजीसे साक्षात्कार होने पर ज्ञात हुआ कि स्वामी जी और आर्य्यसमाज ने उनको ऐसे बढ़ावे दिये कि तुम ऐसे योग्य और ब्राह्मणके पुत्र होकर इन वैश्योंके शिष्य बने और वेदोंका खण्डन करने लगे यह कितने शोक और अधः पतनकी बात है। जब तुमसे ही योग्य ब्राह्मण वेदोंका खण्डन करने लगेंगे तो उनकी कैसे रक्षा होगी। देखो अभी हालमें ही तुम्हारे निकटस्थ प्रिय बन्धु गणपति जी शर्मा मर गये उनके स्थानकी पूर्ति तुम्हें करना चाहिये। हम सन्यासी, तुमसे बड़े और तुम्हारे शिक्षक हैं इस लिये हमारा अनुरोध तुमको अवश्य मानना चाहिये। हमारे जीते तुम जैन धर्म्ममें नहीं जा सकते। इत्यादि। स्वामी जी और आर्यसमाजकी इन हृदय विदारक बातोंने पंडित जीके हृदयको (जो कि उनके निकटस्थ प्रिय बन्धु पंडित गणपति जी शर्मोके अकालिक वियोगके कारण-जिसकी कि सूचना पंडित जी को आज ही प्राप्त हुई थी-अत्यन्त शोकाकुल था) पिघला दिया और वह अपने नैतिक धैर्यसे च्युत हो गये। बहुत दबाव पड़ने पर उन्हें स्वामी जी और आर्यसमाजका ड्राफ्ट किया हुआ निम्न विज्ञापन प्रकाशित करनेकी अनुमति देनी ही पड़ी।

जैनधर्म परित्याग ॥

कल जो मेरा लैक्चर जैनसभामें वैदिकधर्म और जैनधर्मकी तुलना इस विषयपर हुआ था और उस विज्ञापनमें वेदोंकी पोल खोलना भी जैन भाइयोंने प्रकाशित किया था, परंच दिनमें शास्त्रार्थ जोके श्रीस्वामी दर्शनानन्द जीके साथ जैन पंडित गोपालदासजी बरैय्याका हुआ था उस समय परिणामको देखकर मुझे पूर्व कृत कर्मोंपर अत्यन्त पश्चाताप करना पड़ा और मैंने अपने व्याख्यानमें वेदोंकी पोल खोलनेके स्थानपर वेदोंका महत्व ही दर्शाया आज भी मैं जैन धर्मके प्रभावका प्रायश्चित्त करके वेदोंके महत्वपर कुछ वर्णन करूंगा ॥

समय=सायंकाल ८ बजे से

स्थान—आर्यसमाज भवन अजमेर।

ह० दुर्गादत्त शर्मा, ता० १-७-१२ ई०

—:०:—

आर्य्य समाजकी ओरसे प्रकाशित पंडित दुर्गादत्त जी के उपर्युक्त विज्ञापनका सभाकी ओरसे निम्न विज्ञापन द्वारा उत्तर दिया गया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

मानकी मरम्मत।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंको यह प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि कल जो शास्त्रार्थ जैन और आर्य्य समाजमें श्रीमान् स्याद्वाद वारिधि वादि गज केसरी पं० गोपालदासजी बरैया और स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती महाराजमें हुआ था उसमें तीन घन्टे विषयसे विषयान्तर होते हुए स्वामीजी महाराज ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व सिद्ध न करसके पर आर्य्यसमाजको किसी प्रकार अपने टूटे हुए मान की मरम्मत करना इष्ट थी इस कारण उसने पं० दुर्गादत्तजी शर्मा (जिनका कि श्रद्धान कुछ समयसे आर्यसमाजसे विचलित होकर जैन धर्मपर आता हुआ मालूम होता था) को किसी प्रकारका आश्वासन देकर पुनः आर्यसमाजी बनानेकी चेष्टा करके अपने मानकी मरम्मत की है पर समाजको विश्वास रखना चाहिये कि इस प्रकारकी कार्रवाइयोंसे उसके मानकी मरम्मत कदापि नहीं हो सकती यदि यथार्थमें पंडित दुर्गादत्तजीको दोपहरके शास्त्रार्थके बाद ही जैनधर्मपर शंकायें होगई थीं तो उन्होंने रात्रिके निज व्याख्यानमें वेदों की पोल क्यों खोली और क्यों यह कहा कि मैं वेदोंकी पोल कहां तक दिखलाऊं उसमें तो निरी पोल ही पोल भरी है यथार्थमें यदि पंडित दुर्गादत्त जी को जैन धर्मपर शंकायें होगई हैं तो हम उनको उनके कल्याणार्थ पुनः जैनधर्मपर निज समस्त शंकाओंके समाधान और वेदोंके महत्त्व सिद्ध करनेका मौका देते हैं यदि और कोई बात हो तो आप खुशी से आर्यसमाज में सम्मिलित हूजिये पर साथ ही विश्वास रखिये कि इस प्रकारकी कार्रवाइयोंसे जैन मतका कुछ भी नहीं बिगड़ता क्योंकि उसके सिद्धान्त नितान्त सत्य और अटल हैं।

प्रार्थी—घीसूलाल अजमेरा मंत्री

श्री जैन कुमार सभा अजमेर ता० १ जुलाई १९१२

—:०:—

सन्ध्याकी सभाका अधिवेशन पुनः प्रारम्भ हुआ रात्रिको वादि गजकेसरीजीके व्याख्यानका नोटिस होनेसे बड़ी भीड़ थी और अन्य पुरुषोंके

साथ ही साथ दीवान बहादुर पंडित गोविन्द रामचन्द्र खांडेकर भूतपूर्व एक्सट्रा जुडिशल कमिश्नर, राय बहादुर पंडित सुखदेव प्रसाद जी भूतपूर्व दीवान जोधपुर, राय सेठ चान्दमल जी आनरेरी मैजिस्ट्रेट, कुंवर छगनमल जी आनरेरी मजिस्ट्रेट, पंडित दामोदर दास जी प्रोफेसर आव संस्कृत गवर्न्मेण्ट कालेज, सेठ बुद्ध करण जी मेहता और राय बहादुर सेठ सोभाग मल जी डड्ढा आदि सज्जन पधारे थे। भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चात् सर्व सम्मति से राय बहादुर सेठ सोभाग मल जी डड्ढा ने सभापतिका आसन सुशोभित किया। घोर करताल और हर्ष ध्वनिके मध्य श्रीमान् वादि गजकेसरी जी व्याख्यान देनेको उठे और आपने लगभग दो घण्टे तक जैन तत्त्वोंका स्वरूप ऐसी योग्यता और विद्वत्तासे सरल भाषामें वर्णन किया कि लोग सुनकर दङ्ग रह गये और पंडितजीके विद्या, बुद्धि और व्याख्यान शैलीकी प्रशंसा सहस्र मुखसे करने लगे। भजन होने के पश्चाद् जयकार ध्वनिसे सभा समाप्त हुई।

मङ्गलवार २ जुलाई १९१२ ईस्वी।

यद्यपि पूर्व निश्चित प्रोग्रामके अनुसार सभाका अधिवेशन कल ही समाप्त हो जाना चाहिये था परन्तु सर्व साधारण के अनुरोधसे आजका दिवस और बढ़ाया गया। मध्यान्हको नियत समयपर सभाका कार्य्य पुनः प्रारम्भ हुआ। भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चाद् विद्यार्थी देवकी नन्दन जी ने शिमरघो निवासी शम्भुदयाल जी तिवारी वर्तमान निवास स्थान बाबू हरि पदो मुकर्जी पीरमिट्ठागली गांछान अजमेरकी शङ्काओंका निम्न पत्र पढ़ कर सुनाया॥

ओ३म्

अजमेर ३०—६—१२

श्रीमान् मंत्री
जैन कुमार सभा अजमेर

कृपया मेरे दो प्रश्नोंके उत्तर जो निम्न लिखित हैं और जिनकी मुझे शंका है जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके किसी योग्य सञ्चालक से सर्व साधारण के सामहने प्रगट करा कर मेरे पास शीघ्र भेजने की कृपा करें।

श्रीयुत ठाकुर दिग्विजय सिंह जी ने जो व्याख्यान ता० २९—६--१२ की रात्रि को दिया था उसी में जैनधर्म्मके सम्बन्ध में ये शंकाएं उद्भूत हुई हैं।

(१) अभव्य राशिको पर्य्यायमात्र बदलने पर श्री जैन धर्म्म मुक्ति नहीं दे सक्ता। हां स्वर्गादि सुख उसे भी प्राप्त हो सक्ते हैं।

शंका—जब अभव्य राशिको रूपान्तर करने पर भी जैन धर्म्म मुक्ति प्रदान नहीं कर सक्ता और स्वर्गादि सुख ही दे सक्ता है तो ऐसे धर्म्म से क्या फायदा है जो सबका भला न कर सके। अगर अभव्य राशि वाला कोई जिज्ञासु इस धर्म्मसे मुक्ति चाहने की इच्छा करे तो वह उसे कहां प्राप्त हो सकती है ऐसा धर्म जब जिज्ञासु जनोंका ही कल्याण नहीं कर सक्ता तब इसे कोई क्योंकर दृढ़ धर्म्म समझे। "कीरति भूत सुलभ गति सोई,, "सुरसरि सम सब कर हित होई,,

(२) परोपकार—इस शब्द का अर्थ जैन धर्म्म में क्या है और वह राग में है या राग से वाहिर है।

जैनतत्व प्रकाशनी सभाका चिरपरिचित— शंभुदयाल तिवारी

तिवारी जी के उपर्युक्त दोनों प्रश्नोंके उत्तर श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा की ओरसे निम्नलिखित लेखबद्ध दिये गये थे जिसको भी देवकीनन्दनजीने पढ़कर सुनाये और उनपर नियमानुसार ऐसी व्याख्या की कि सर्व साधारण उनके भावको भलीभांति समझ गये।

वन्दे जिनवरम्।

श्रीमान् शम्भुदयाल जी शर्म्मा तिवारी के प्रश्नोंके उत्तर।

१ जैनधर्म आत्माका स्वभाव है और वह प्रत्येक ही जीवमें अनादि काल से कर्मवश विकृत रहता है। भव्यजीव उसको कहते हैं जो कारण सामग्री मिलनेसे धर्मकी स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो कर मोक्षको पा लेता है। परन्तु अभव्य जीवमें एक ऐसी प्रतिबन्धक शक्ति है जो धर्मकी स्वाभाविक अवस्था नहीं होने देती। जैसे जो स्त्री वन्ध्या नहीं है उसके पुरुषसंयोग होने पर सन्तानोत्पत्ति हो सकती है परन्तु वन्ध्या स्त्री के एक ऐसी प्रतिबन्ध शक्ति है कि जिससे उस के सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। उस ही प्रकार भव्य और अभव्यका स्वरूप जानना, अभव्य जीव अपने कर्मों का नाश न कर सकने के कारण कहीं भी कभी मोक्षको प्राप्त नहीं हो सकता॥

२ परोपकारका अर्थ दूसरे को लाभ पहुंचाना है और वह राग रहित या राग सहित दोनों अवस्थाओंमें होकरके पहुंचाया जा सकता है। यथा मेघ

सर्वको बिना राग ही लाभ पहुंचाता है और हम लोग अपने कुटुम्ब आदि को राग सहित हो कर लाभ पहुंचाते हैं ॥

चन्द्रसेन जैनवैद्य मन्त्री श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा । स्थान अजमेर ता० १ । ७ । १२

—:o:—

प्रश्न और उत्तर सुनाये जानेके पश्चात् तिवारीजीकी सभामें खोज कीगयी पर आप उपस्थित न थे इस कारण यह निश्चय हुआ कि उत्तर पत्र श्री जैनकुमार सभाके मन्त्री बाबू घीसूलालजी अजमेराके पास रहे और वह उसको तिवारीजीसे मिलनेपर उनको देदें । इसके पश्चात् विद्यार्थी मक्खनलालजीने पण्डित दुर्गादत्तजीके उस व्याख्यानका खण्डन किया जो कि उन्होंने आर्यसमाज भवनमें तारीख १ जुलाईकी रात्रिको दिया था । यद्यपि अपने व्याख्यान में पण्डित दुर्गादत्तजीने जैनधर्मके खण्डन और वेदोंके महत्त्व प्रदर्शन में कुछ नहीं कहा था--क्योंकि उनको यथार्थमें जैनधर्मपर अश्रद्धा और वेदोंपर श्रद्धा तो थी नहीं--और जो कुछ उनको कहना पड़ा था वह सब ऊपरी भयसे सामान्य बातें थीं पर तो भी सर्व साधारणके भ्रम निवारणार्थ उसका खण्डन किया गया । सर्व सभाकी इच्छानुसार न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्दजीने बड़ी योग्यतासे मूर्तिपूजन पर विवेचन किया और उसके पश्चात् कुंवर दिग्विजयसिंहजीने प्रतिनिधि हो कर श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाका सन्देशा श्री जैनकुमार सभा अजमेरको सुनाया जिसमें कि अपने ज्ञान और चारित्रकी वृद्धि करते हुए जैनकुमारोंको जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना करनेका हृदयग्राही शब्दोंमें उपदेश था । वादिगज केसरीजीने कुंवर साहबका समर्थन करते हुए उपसंहार वक्तृता दी जिसमें कि जैनियोंको बड़े जोर शोरसे जैनधर्मका प्रचार कर स्वपर कल्याण करनेका उपदेश था । अन्तमें धन्यवाद और बधाई आदि के भजन होकर जैनधर्मकी बड़ी प्रभावनाके साथ जयजयकार ध्वनिसे सभा का उत्सव समाप्त हुआ ॥

सन्ध्याको श्रीजीकी रथयात्रा बड़े ठाठ-बाट और धूमधामसे हुयी और इस प्रकार प्रोग्रामानुसार श्री जैनकुमार सभा अजमेरका प्रथम वार्षिकोत्सव बड़े धूमधाम और सफलतासे समाप्त हुआ ॥

आज सन्ध्याको आर्यसमाजकी ओरसे निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ।

ओ३म्

अब हठधर्मीसे काम नहीं चलेगा ।

जिन निर्पक्ष विद्वानोंने परसों के शास्त्रार्थको सुना होगा, उनको भली भांति प्रकट होगया होगा कि श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्दजी महाराजके कई बार जुदी जुदी दलीलें व अनेक प्रकार की मिसालें देकर ईश्वर कर्त्ता सिद्ध करने पर भी जैन पंडित गोपालदास जी अपनी कमजोरी प्रकट न होने देने व भोले भाले लोगों पर अपना प्रभाव डालने के लिये उछल २ कूद २ कर यही कहते रहे कि "मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं मिला" यह चाल इन्होंने पहिले से ही सोच ली थी इसी कारण बार २ कहने पर भी लेखबद्ध शास्त्रार्थसे इनकार किया, परन्तु सत्य छिपाये कब छिप सकता है ! यह तो चालवाज़ी के ७ पर्दे फाड़कर भी प्रकट होजाता है ।

चुनांचे स्वामी की शान्तवृत्ति और अखण्ड शास्त्रोक्त दलीलोंका प्रभाव अनेक आत्माओं पर पड़ा जो स्वामी जीके पास आकर अपने संशय मिटाते रहे, इनमेंसे मुख्य पं० दुर्गादत्तजी पूर्व जैन उपदेशक हैं, जिन्होंने शुद्ध हृदय से जैन धर्म को तिलांजलि देकर वैदिकधर्मकी शरण लेने का अपने आप विज्ञापन दिया और दूसरे शंभुदत्तजी नामी महाशय ने भी जैनमत से अपनी घृणा प्रकट की, इससे घबराकर हमारे जैनी भाइयोंने अपनी शर्म उतारने के लिये पंडित जी के शुद्ध भावों पर व्यर्थ लांछन लगाया, शायद उन्हों ने सब लोगों को बेवकूफ ही समझ रक्खा है, परन्तु लोग भले प्रकार समझ गये हैं कि अगर पण्डित जी ऐसे ही होते जैसा कि जैनी अब चिढ़कर लिखते हैं तो काहे को जैन लोग एक दिन पहले इनकी विद्वत्ता का लम्बा चौड़ा विज्ञापन देते और सभा में बड़े ज़ोर शोर से इनकी तारीफ़ करते । अब जब इन्होंने जैनमत की पोल खोलदी तो खिसियाने होकर आर्यसमाज और पण्डितजी पर झूठे दोष लगाने लगे ।

मन्त्रीजी ! यदि पण्डित जी ने अपने व्याख्यान में (जो कि जैनसभामें ३० जूनको हुआ था) वेदों की पोल ही खोली थी तो आपने व्याख्यान के बीच में काग़ज़के टुकड़े पर क्या लिखकर दिया था और उसके उत्तरमें पण्डितजीके इन शब्दों का क्या आशय था कि "कि वेदों में निरी पोल ही पोल है जिसमें आप सब समा जायेंगे,, ।

महाशय ? इन झूठी बातों से अब कुछ नहीं बनेगा अच्छा हो कि हठ को छोड़कर सत्यको ग्रहण करें और सबके मालिक ईश्वरपर विश्वास लायें, इसीमें कल्याण है।

पण्डितजी हर समय आप लोगों के संशय मिटाने को तय्यार हैं।

तारीख २—७—१२ } जयदेव शर्म्मा मन्त्री— आर्य्यसमाज, अजमेर

——:o——

ब्यावर के कुंवर राम स्वरूप जी रानी वाले, वहां के दिगम्बर जैन सभा के सभ्यों और पञ्चों के अनुरोध से श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा आज रात को ब्यावर पधारी।

बुधवार ३ जुलाई १९१२ ईस्वी।

कलके "अब हठ धर्म्मी से काम नहीं चलेगा,, शीर्षक आर्य्य समाज के विज्ञापन का उत्तर निम्न विज्ञापन द्वारा दिया गया।

* वन्दे जिनवरम् *

आर्य समाजी ढोलकी पोल और उसको शास्त्रार्थका पुनःचैलेञ्ज।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवा में निवेदन है कि कल एक विज्ञापन "अब हठ धर्मी से काम नहीं चलेगा" शीर्षक आर्य समाज की ओरसे निकला है जिस में कि उसने सत्यको बिलकुल पास भी नहीं फटकने दिया है।

क्या आर्य समाज प्रश्नका उत्तर न देकर अपने स्वामीजीके विषय से विषयान्तर होते हुए असंबंग कहने वाले को ही प्रश्नका उत्तर देना समझती है? यदि उसकी समझमें वादि गज केसरीजीके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रिया में सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्वके परस्पर विरोधी गुणके दूषण का समाधान हो गया था तो क्यों नहीं उसने पबलिक के ज्ञापनार्थ "मानकी मरम्मत,, शीर्षक हमारे विज्ञापन में प्रकाशित उक्त दूषणका निराकरण छापा। छापती कैसे उसके छपते ही उसकी सारीपोल खुल जाती।

स्वामी दर्शनानन्द जी की इच्छानुसार ही शास्त्रार्थ मौखिक रक्खा गया

था। यदि समाजको अबभी लिखित शास्त्रार्थ करनेका हौसला और बाकी रह गया है तो हम उसको फिर भी चैलेञ्ज देते हैं कि वह अति शीघ्रही लिखित भी शास्त्रार्थ करके अपने मनके हौसले निकाल ले।

समाजको विश्वास रखना चाहिये कि सफलता कूदता वही है जिसका कि पक्ष ठीक होने का उसके हृदयमें निश्चय होता है और जिसका पक्ष ठीक नहीं होता वह घबड़ा जाया करता है।

पं० दुर्गादत्त जीको पूर्व जैन उपदेशक बतलाना सरासर लोगोंकी आंखों में धूल फेंकना है क्योंकि वह पहले आर्यसमाजी थे और उन्होंने समाजमें ३ वर्ष तक उपदेशकीका काम किया था। जब उनको समाज में शान्ति प्राप्त न हुई तब उन्होंने सिर्फ ३ महीने से जैन धर्म की शरण ग्रहण की थी जैसा कि "जैन मित्र,, के ३ अप्रेल सन् १९१२ ई० के अंक १२ वें में पृष्ठ १२ पर प्रकाशित "मैंने जैनधर्म की शरण क्यों ली,, शीर्षक उनके लेख से प्रगट है। वह जैनधर्मके सिद्धान्तोंको अच्छी तरह नहीं जानते थे पर उनका विचार जैन विद्वानोंसे जैन सिद्धान्तोंके अध्ययन करने का था कि इतने में ही ता० ३० जूनके शास्त्रार्थ में भारी पछाड़ खाने से अपने टूटे हुए मानकी मरम्मत करनेके अर्थ समाज ने उनको जिसतिस प्रकार पुनः आर्य समाजी बनाने का प्रयास किया है।

तारीख ३० जूनके शास्त्रार्थका क्या परिणाम हुआ था पं० दुर्गादत्त जी ने वेदोंके विषयमें क्या कहा यह हमारे और समाजके कहने की बात नहीं है इस को तो विज्ञ पबलिक स्वयंही जानती है अब उसके अन्यथा कहनेसे क्या हो सक्ता है।

जो हो। हमको अब इस प्रकार कागज़ी घोड़े दौड़ा कर अपना व पबलिकका अमूल्य समय नष्ट करना इष्ट नहीं है अतः हम समाजको लिखित शास्त्रार्थ करके भी अपने मनका हौसला निकाल लेनेका मौका देते हैं।

पूर्ण आशा तथा दृढ़ विश्वास है कि समाज इस चैलेञ्जको पाते ही फौरन शास्त्रार्थ करने की स्वीकारता प्रदान कर हम लोगोंको परम अनुगृहीत करेगी।

यदि इस विषय में समाजका कोई समुचित उत्तर तारीख ४ जुलाई सन् १९१२ ई० की शाम तक [जब तक कि हमारी श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा

समाजके बादकी खाज फिरभी मिटानेको यहां उपस्थित है] न प्राप्त हुआ तो यह समझा जावेगा कि समाजको शास्त्रार्थ करना इष्ट नहीं केवल धमकी देकर के ही पबलिकको धोखेमें डाल रही है।

ता—६—७—१९१२ अजमेर

घीसूलाल अजमेरा मन्त्री श्रीजैनकुमार सभा अजमेर

आज सन्ध्याको व्यावरमें सेठ ताराचन्द जी रईस नसीराबादके सभापतित्वमें सभा प्रारम्भ हुई। आम विज्ञापन बांटे जानेके कारण सभामें खूब भीड़ थी। भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चात् न्यायाचार्य्य पंडित माणिकचन्द जीका "अनेकान्त" पर विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान हुआ। कुंवर दिग्विजयसिंह जी ने "जैन धर्मके सौन्दर्य" पर प्रभावशाली भाषण किया। वादिगजकेसरी जीने "सम्यक्त्व" पर अपूर्व विवेचन कर सर्व साधारणको मुग्ध कर दिया। भजन व मङ्गल होकर जय जयकार ध्वनिसे सभा सानन्द समाप्त हुई॥

बृहस्पतिवार ४ जुलाई १९१२ ईस्वी।

नसीराबादके सेठ ताराचन्द जी, लाला प्यारेलाल जी, सेठ लक्ष्मी चन्द जी और दिगम्बर जैन सभाके सभ्यों और पञ्चोंके अनुरोधसे आज सभा नसीराबाद पधारी।

आर्यसमाजकी ओरसे आज निम्न विज्ञापन श्री जैन कुमार सभाके "आर्यसमाजी ढोलकी पोल और उसको शास्त्रार्थका पुनः चैलेञ्ज" शीर्षक विज्ञापनके उत्तरमें प्रकाशित हुआ।

॥ ओ३म्॥

सरावगियोंकी नंगी पोल, भीतर तांबा ऊपर झोल।

सर्व साधारणको विदित हो कि जैनियोंसे जब हमारे सीधे सच्चे विज्ञापनका कुछ उत्तर न बन पड़ा तो गालियोंपर उतारू होगए हैं और एक विज्ञापन "ढोलकी पोल" नामक निकाला है जिसके शब्द २ से झूठ टपक रहा है स्वामीजीकी अखण्ड दलीलोंका प्रभाव जैसा विचारशील पुरुषों पर पड़ा, वह उसके नतीजेसे ही प्रकट है शक्ति तो गीदड़के समान और नाम रक्खें वादिगजकेशरी ठीक, आंखोंके अंधे और नाम नैनसुख, अपने मुंह मि-

यां मिट्ठू बनना इसीको कहते हैं परन्तु इन थोथे आडम्बरोंसे भोले भाले लोग भले ही धोखा खा जायें, समझदार तो खूब समझते ही हैं "मानकी मरम्मत" नामक विज्ञापनका हरएक बातका उत्तर होते हुए भी यह लिखना कि उसका निराकरण क्यों नहीं छापा, कितनी हठधर्मी है।

श्रीस्वामीजीने अनेक दलीलों व मिसालोंसे भली प्रकार सिद्ध कर दिया था कि चैतन्य शक्तिकी क्रिया अनेक परिणाम वाली होती है इससे ईश्वरमें कुछ विरोध नहीं आता, परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने तो एक मंत्र सीख रक्खा है कि हरएक बातके पीछे कह देना कि "इसका उत्तर नहीं हुआ" यह तो वही मसल हुई कि मुल्लांजी! तुमने हराया तो बहुत पर हमने हार मानी ही नहीं यह लिखना कितना असत्य है कि श्रीस्वामी दर्शनानन्दजी की इच्छानुसार ही शास्त्रार्थ मौखिक रक्खा गया था। श्री स्वामीजी तथा बाबू मिट्ठनलालजी वकीलने सभामें कई बार कहा कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो ताकि किसीको अपनी बातसे पलट जानेका मौका न रहे, परन्तु इन लोगों ने माना ही नहीं, उधर श्रीस्वामी जीने झूठेको उसके दरवाजे तक पहुंचाने का दृढ़ संकल्प कर लिया था, इसी कारण इन लोगोंकी हरएक बातको ही मंजूर कर लिया, इससे बढ़कर निडरता व वैदिक सत्यतापर दृढ़ विश्वास क्या होगा कि इन्हींका स्थान, इन्हींका दिया हुआ कुवक्त, इन्हींका सरावगी प्रधान, इन्हींका रटा हुआ विषय और इन्हींकी सभामें जाकूदे ताकि यह लोग किसी प्रकार भी टालमटोल न कर सकें। अब हारकर लिखते हैं कि लिखित शास्त्रार्थ फिर कर लो, सो हमारा तो चैलेञ्ज पहिलेसे ही मौजूद है कि जब चाहो सत्यासत्य निर्णयके लिये शास्त्रार्थ करलो। यह लोग लिखते हैं कि उछलता कूदता वही है जिसका पक्ष ठीक हो और जिसका पक्ष ठीक नहीं हो तो वह घबरा जाता है सो यह तो कट्टरसे कट्टर जैनी भाई भी कहते हुए सुनाई दिये कि स्वामी जी कैसी शान्ति और धीरजसे अन्त तक उत्तर देते रहे, परन्तु पंडित गोपालदासजी की तरह उन्होंने धैर्यको नहीं छोड़ा। उछलना कूदना सत्यकी निशानी नहीं, दम्भकी है, क्योंकि थोथा चना बाजे घना।

यदि पं० दुर्गादत्त जी जैन उपदेशक नहीं थे और जैन सिद्धान्तोंको अच्छी तरह नहीं जानते थे तो उनके द्वारा जैनमतकी वैदिक धर्मसे तुलना करानेका विज्ञापन किस बिरते पर दिया गया था? यह विज्ञापन झूठेके मुंहपर

कोलस लगानेके लिये सर्वदा मौजूद रहेगा। पण्डितजी जब तक जैनी थे तब तक तो शास्त्री और विद्वान् थे और अब जैनमतको तिलाञ्जलि देते ही कमलियाकत होगये, परन्तु इस मिथ्याप्रलापको पब्लिक भली प्रकार समझती है। इन लोगोंने हरएक बातमें चालाकी सीखली है, पहिले भी शास्त्रार्थको टालनेके लिये ९॥ बजे चिट्ठी भेजी और विना उत्तर पाये ही दो बजे सख्त गर्मीका वक्त यह समझ कर मुकर्रर कर दिया कि न तो ऐसी कड़ी शर्तें मंजूर होंगी और न शास्त्रार्थ होगा। अब भी चालबाजी से विज्ञापन ब्यावर में छपवा कर ३ तारीखकी रातको बांटा और शास्त्रार्थके लिये ४ थी तारीखका समय दिया है। यदि ऐसा ही होसला था तो शास्त्रार्थके पीछे जब स्वामीजीने सभामें कईवार शास्त्रार्थ कई दिनों तक जारी रखनेके लिये कहा था तो इन लोगोंने क्यों इनकार कर दिया, खैर। यदि अब भी स्वामीजीके चले जानेके पश्चात् कुछ होसला आगया हो और ३ वर्षकी अबला जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभामें ३० वर्षके प्रौढ आर्य्यसमाजके वादकी खाज मिटानेकी शक्ति पैदा होगई है तो आर्य्यसमाजके लिये इससे बढ़कर और खुशी क्या हो सकती है?। हम डंके की चोट कहते हैं कि लेखबद्ध शास्त्रार्थके लिये हम हरवक्त तय्यार हैं आप शीघ्र ही आरम्भ करें, परन्तु इस जिम्मेवरीके लिये किसी योग्य प्रतिष्ठित अजमेर निवासीकी ओरसे जिम्मेवरीका विज्ञापन होना चाहिये, लौंडोंके द्वारा ऐसे काम पूरे नहीं हो सकते।

जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर

तारीख ४-७-१२

सन्ध्याको नसीराबादमें कुंवर रामस्वरूपजी रानी वाले रईस ब्यावरके सभापतित्वमें सभोका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। आम नोटिस बटजाने और श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ख्याति हो जानेके कारण आज सभामें बड़ी भारी भीड़ थी। भजन होनेके पश्चात् न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्दजी का मङ्गलाचरण रूपमें एक संक्षिप्त व्याख्यान हुआ। कुंवर दिग्विजयसिंह जी घोर करताल ध्वनिके मध्य "मूर्तिपूजन„ पर व्याख्यान देनेको खड़े हुए। आपने ऐसी योग्यतासे मूर्तिपूजन सिद्ध किया कि लोग दङ्ग रहगये और वाह वाह करने लगे। इसके पश्चात् वादिगजकेसरीजीका "कर्त्तृखण्डन„ पर ऐसी सरल और मिष्ट वाणीमें व्याख्यान हुआ कि लोगोंके हृदयमें उसकी लीक खिंच गयी और बड़े २ विद्वान् कर्त्तावादियोंको भी इस विषयमें शङ्कायें हो गयीं।

इन लोगोंके प्रभावको नष्ट करनेके अर्थ अजमेर के आर्यसमाजियोंने नसीराबादमें पहुंच कर तरह तरह की गप्पें उड़ाकर सर्वसाधारणको भ्रममें डाल रक्खा था जिनका कि प्रतिवाद करना उचित समझा गया। उसके अर्थ कुंवर दिग्विजयसिंहजीने खड़े हो कर सर्व यथार्थ वार्ता कह सुनायी जिससे कि आर्यसमाजियोंका सर्व प्रपञ्च लोगों पर प्रगट हो गया। अपनी पोल इस प्रकार खुलती देखकर पण्डित लालताप्रसादजी असिस्टेंवट सेक्रेटरी परोपकारिणी सभा अजमेरसे न रहा गया और आपने सभामें खड़े होकर फिर लोगों को भ्रममें डालना प्रारम्भ किया पर दो तीन वार उत्तर प्रत्युत्तर होने पर आपको वन्द होकर लज्जित होना पड़ा। अपनी लज्जाको दूर करनेके अर्थ आपने उसी समय लिखित शास्त्रार्थ करनेकी धमकी दी जिसपर हमारी ओर से हर्ष प्रगट किया जाकर आपसे पूछा गया कि यह लिखित शास्त्रार्थ आप स्वयं करते हैं या किसी समाज की ओर से। आपने आर्यसमाज अजमेर का नाम लिया जो कि हमारी ओरसे विना उसकी स्वीकारता दिखलाये अस्वीकार किया गया। इस पर आर्यसमाज नसीराबादने आपको अपनी ओर से शास्त्रार्थ करनेका प्रतिनिधि नियत किया॥

दोनों ओरके निश्चयके अनुसार वहीं सभामें एक एक प्रश्न परस्पर लिखा जाने लगा और हमारी ओरसे निम्न प्रश्न लिखा गया॥

आप ऐसे मूल पदार्थ कितने और कौन से मानते हैं जिनमें कि सर्व पदार्थ गर्भित हो जांय और वे किसीमें गर्भित न हों और उनके लक्षण क्या हैं। प्रमाण से इन पदार्थोंका निर्णय किया जायगा अतः प्रमाण के सामान्य और विशेष लक्षण लिखिये॥

—:o:—

हमारी ओरका उपर्युक्त प्रश्न लिखा जाकर सभामें सुनाया जानेको ही था कि पण्डित लालताप्रसादजीने (अपना प्रश्न लिखना वन्द करके) खड़े हो कर यह कहा कि यह शास्त्रार्थ बहुत दिवस तक जारी रहेगा अतः आप लोग अपनी सभा वन्द करके प्रथम नियमादि निश्चित कर लीजिये तब कल से शास्त्रार्थ चलाइये। आपकी वात कईवार हमारे प्रतिवाद करने पर भी

समाप्त हुई ॥

जबतक हम लोग समाप्त करैं करैं तबतक पण्डित लालताप्रसादजी सभा से अपने मित्रमण्डल सहित चुपचाप खिसक गये और बहुत ढूंढ खोज करने पर भी आपका पता न चला ॥

शुक्रवार ५ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

प्रातःकाल होते ही नसीराबाद आर्यसमाज के मन्त्री बुलाने पर आये और शास्त्रार्थके विषयमें पूछे जाने पर कहा कि हमारे पण्डित लोग तो अजमेर चलेगये अब हम क्या करैं। हमारी ओर से आपको वही हमारा कल रातको लिखा हुआ प्रश्न दे दिया गया और कहदिया गया कि इसका उत्तर बादमें जब आपसे हो सके भिजवा दीजियेगा ॥

कल रातको व्याख्यान सुनकर ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व और मूर्तिपूजन के विषयमें अनेक सन्देहों को प्राप्त विद्वान् वैष्णव पण्डित चुन्नीलाल जी शर्मा हम लोगोंके स्थान पर पधारे और न्यायाचार्यजी से संस्कृतमें उपर्युक्त दोनों विषयों पर डेढ़ दो घण्टे तक वाद विवाद कर सन्तोषको प्राप्त हुये और जैनधर्मकी प्रशंसा करते हुये चलेगये ॥

आज दिनको मध्यान्ह समय सभा पुनः अजमेर लौट आयी। सन्ध्या को बाड़िगंज कैसरीजीकी मन्दिरजीमें शास्त्र सभा हुयी और आपने उसमें कई तत्त्वों और बातोंका अपूर्व स्वरूप दिखला कर सबको आनन्दित किया ॥

कलके आर्यसमाजके विज्ञापनका उत्तर निम्न विज्ञापन द्वारा दियागया।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

आर्यसमाज की खुलगई पोल। शास्त्रार्थ से टालम टोल।

सर्व साधारण सज्जन महोदय की सेवा में निवेदन है कि कल एक विज्ञापन " सरावगियों की मक्की पोल भीतर तांबा ऊपर खोल " शीर्षक आर्यसमाज की ओरसे निकला है जिसमें कि गालियों और असभ्य बातोंके सिवाय सारबात का लेशमात्र भी नहीं है और यह प्रत्यक्ष ही है कि जो हीन शक्ति हुआ करता है वही इस प्रकार गालियों तथा असभ्य शब्दों का प्रयोग किया करता है।

गीदड़ कौन है और सिंह कौन है यह ठहरने तथा भागजानेके कृत्योंसे ही पबलिक को स्वयं प्रगट है।

समाज का यह लिखना कि उसने "भागकी मरम्मत" शीर्षक हमारे विज्ञापनकी समग्र बातोंका उत्तर प्रकाशित कर दिया है नितान्त ही असत्य है क्योंकि उसके "अब हठधर्मी से काम नहीं चलेगा" शीर्षक विज्ञापनमें ईश्वर की स्वाभाविक क्रिया में सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व के परस्पर विरोधी गुण के हमारे दिये हुये दूषण का कुछ भी समाधान नहीं है और न इस विज्ञापन में ही कुछ है। इससे भली भांति प्रगट होता है कि समाज के पास उसका उत्तर है ही नहीं।

जब कि श्री जैन तत्व प्रकाशनी सभा अपने मामूली से मामूली शङ्का समाधानको भी लिखित प्रणाली से करती है जैसा कि समाजको उसके विज्ञापनों और कार्यवाहियों से प्रगट होगा तो इतने बड़े भारी शास्त्रार्थके विषयको वह कब मौखिक रख सकती थी। क्या समाज इस बात से इन्कार कर सकता है कि स्वामी जीने पांच पांच मिनट मौखिक शास्त्रार्थके लिये नहीं रक्खे थे और जब उस ने उन की ही बात को स्वीकार कर लिया तो क्या इससे यह प्रगट नहीं है कि उनकी इच्छानुसार ही मौखिक शास्त्रार्थ रक्खा गया था। निस्सन्देह श्रीजैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाने दोनों पक्षोंकी ओरसे कहे हुए मौखिक शब्दोंकी रिपोर्टपर जो कि दोनों ओरके रिपोर्टरोंने लिखी थी हस्ताक्षर करनेसे इस लिये इन्कार कर दिया था कि वहांके रिपोर्टर लोग ऐसे संक्षिप्त लिपि प्रणालीमें चतुर नहीं थे जो कि कहे हुए शब्दों को अक्षर प्रत्यक्षर लिख सकें और एक भी अक्षर या शब्द चूक जानेसे भाव अन्यथा हो जाता है। यदि समाज के प्रस्तावानुसार ही दोनों ओरके तीन तीन रिपोर्टरोंमेंसे प्रत्येकके लेख जांच करके हस्ताक्षर किये जाते तो शास्त्रार्थका सारा समय इसीमें नष्ट होजाता।

समाजको विश्वास रखना चाहिये कि पराजित पुरुष कभी भी विजयी का सामना करनेके लिये मैदानमें नहीं ठहर सकता किन्तु शीघ्रही भाग जाता है। विजयी पुरुष ही पराजित पुरुषके अपनी पराजयसे इन्कार करने पर उसको पुनः परास्त करनेके लिये मैदानमें आनेको ललकारता है।

यदि समाजको इस बातका विश्वास है कि "ईश्वर इस सृष्टिका कर्ता नहीं

है" यह विषय जैनियोंका रटा हुआ होनेसे बहुत प्रबल है जिसका कि उत्तर देनेमें समाज सर्वथा असमर्थ है तो हम उसकी इच्छानुसार ही किसी भी विषय पर जिसमें वह शास्त्रार्थ करना चाहे शास्त्रार्थ करनेका चैलेञ्ज देते हैं।

समाजका यह लिखना कि उनके स्वामी जी शान्ति और धीरज से अन्त तक प्रश्नका उत्तर अनेक दलीलों और मिसालोंसे देते रहे ठीक नहीं क्योंकि यदि ऐसा होता तो उनके ही तरफके अग्रेसर बाबू मिट्ठनलालजी वकील स्वामीजीसे यह क्यों कहते कि "महाराज पण्डित जीके प्रश्नका उत्तर दीजिये"

पं० दुर्गादत्त जीके पूर्व ही आर्य्यसमाजी होनेके विषयमें हम अपने इस से पूर्वके विज्ञापनमें भले प्रकार लिख चुके हैं। हमारा कहना यह नहीं है कि पंडित दुर्गादत्तजी कम लियाकत हैं। निस्सन्देह उनको जैनमतकी शरण लिए हुए केवल तीन मास ही हुए थे इस कारण उनका जैनमत में प्रवेश अच्छी तरह न होनेसे जैनमतसे फिसल जाना आश्चर्यजनक नहीं है। आर्य्य समाजी उपदेशक होनेसे वेदोंके विषयमें तो उसका ज्ञान पर्याप्त ही था और उनके बहुत थोड़े दिनोंसे जैनी होनेपर भी हमने उनसे जैनधर्म और वेदोंकी तुलना इस कारण कराई थी कि इस थोड़ेसे समयमें भी उन्होंने जो कुछ जैन धर्मका महत्त्व देखा हो उसे पबलिकमें प्रगट करें और वैसा ही उन्होंने अपने व्याख्यानमें किया भी। मालूम नहीं कि दूसरे दिन वह आर्य्यसमाजके किस आश्वासनपर जैनधर्मसे च्युत होगए।

समाजका यह लिखना कि जैनियोंने तारीख ४ जुलाई को शास्त्रार्थका समय निश्चित कर कड़ी शर्त की है साक्षात् लोगों को धोका देना है क्योंकि हम लोगोंने तारीख़ ४ जुलाई को शास्त्रार्थ करना नहीं लिखा था वरन यह प्रगट किया था कि तारीख़ ४ जुलाईकी शाम तक शास्त्रार्थ करनेके विषयमें समुचित उत्तर आजाना चाहिये, आर्य्यसमाजको उचित है कि वह इस प्रकार मिथ्या बातोंको प्रकाश कर पबलिकको धोखेमें न डाले।

तारीख ३० जूनके शास्त्रार्थका परिणाम पबलिक ने भली भांति निकाल लिया है परन्तु अब जब आर्य्यसमाज यह कहकर पबलिकको धोखेमें डाल रही है कि जैनियोंने लिखित शास्त्रार्थ करनेसे इनकार कर दिया और इस के सिवाय वह (आर्य्यसमाज) अपने टूटे हुए मानकी मरम्मत करने के अर्थ थोथी कार्रवाइयां कर रही है तब हम को पबलिकके हितार्थ पुनः उसको शास्त्रार्थका चैलेञ्ज देना पड़ा।

आर्य्यसमाजका यह लिखना कि स्वामीजीने सभामें कईबार कई दिनों तक शास्त्रार्थ जारी रखनेके लिए कहा था पर जैनियोंने शास्त्रार्थ करनेसे इन्कार कर लिया नितान्त असत्य है क्योंकि जब शास्त्रार्थके अन्तमें वादिगज केसरीजीके हिस्सेके ५ मिनट बाबू मिठ्ठनलाल जी ने मांग लिए थे और उस में उन्होंने सबको धन्यवाद दिया और श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओर से उसके मन्त्री चन्द्रसेन जी जैन वैद्यने वैसा ही किया और उसके बादमें सभापतिकी संक्षिप्त वक्तृता होकर सभा समाप्त होते ही उठकर चले गये तब समाजका वैसा लिखना सर्वथा मिथ्या है।

जब कि सिंहका छोटा सा बच्चा ही बड़े २ मदोन्मत्त हस्तियोंके मान भंग करनेमें समर्थ हो सकता है तो तीन वर्षसे ही स्थापित हमारी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा ३० वर्षके प्रौढ़ आर्य्य समाजको परास्त कर मान भंग करनेमें समर्थ हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है॥

आर्यसमाजको विश्वास रखना चाहिये कि लौंडापन या लड़कपन उमरके तात्लुक नहीं हुआ करता वरन अक्लके तात्लुक हुआ करता है। किसका लौंडापन है यह कृत्योंसे पबलिकको स्वयं ही प्रगट है।

अब जो आर्यसमाज किसी योग्य प्रतिष्ठित अजमेर निवासीकी ओर से शास्त्रार्थकी जिम्मेवारीका विज्ञापन प्रकाशित होनेपर शास्त्रार्थ करना चाहती है सो यह उसकी डूबते हुएको तिनकेकी शरण लेनेके समान निरर्थक है और इससे उसकी असमर्थता ही प्रगट होती है क्योंकि जब इस कुमारों के प्रबन्ध द्वारा ही श्रीजैन कुमार सभा अजमेरका प्रथम वार्षिकोत्सव, आर्यसमाजका श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभासे तारीख ३० जूनका मौखिक शास्त्रार्थ निर्विघ्न और शान्ति पूर्वक समाप्त हो गया तो अब डरनेका कारण प्रगट करना सिर्फ टाल टूल ही है। विश्वास रहे कि जबतक आर्यसमाज लिखित शास्त्रार्थ न करले या शास्त्रार्थसे इन्कार न करदे तबतक हम उसको उसके किसी भी बहाने या टालमटूलसे छोड़ने वाले नहीं हैं यदि आर्यसमाजको यह भय है कि श्रीजैनकुमारसभा शास्त्रार्थका यथोचित प्रबन्ध नहीं कर सकती तो हम अबकीवार आर्यसमाजके नियत किये हुए स्थान, समय, विषय और प्रबन्ध में शास्त्रार्थ करनेको उद्यत हैं। परन्तु हम अपना बहुतसा समय इस शास्त्रार्थकी इन्तजारीमें नहीं नष्ट कर सकते अतः समाजको इस विज्ञापनके पाते

ही हमको यह लिख देना चाहिये कि हमारी श्रीजैनतत्वप्रकाशिनी सभा कल कै बजे उसके समाज भवनमें लिखित शास्त्रार्थको आवे ॥

यदि इस विज्ञापनके पानेके समयसे १२ घंटेके भीतर आर्यसमाज इस विज्ञापनका समुचित उत्तर न देगी तो हमारी श्रीजैनतत्व प्रकाशिनी सभा आर्यसमाजको शास्त्रार्थ करनेमें सर्वथा असमर्थ समझ अपने स्थानको चली आवेगी क्योंकि अब वह अपना समय शास्त्रार्थकी केवल प्रतीक्षामें ही व्यर्थ नष्ट नहीं कर सकती ॥

घीसूलाल अजमेरा मन्त्री—श्रीजैन कुमार सभा अजमेर

तारीख ५ जौलाई सन् १९१२ ई०

आज प्रेसोंमें छुट्टी होनेके कारण उपर्युक्त विज्ञापन दिनमें प्रकाशित न हो सका अतः रातो रात छपवाया गया और प्रातःकालके पांच बजे इस विज्ञापन की कई कापियां आर्यसमाज भवनमें भिजवा और चिपकवा दी गयीं।

शनिवार ६ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

मध्यान्हको आर्यसमाज अजमेरका निम्नपत्र प्राप्त हुआ।

ओ३म्

आर्यसमाज अजमेर

कं० आ० १ ता० ६ जुलाई १९१२ ई०

श्रीयुत मन्त्रीजी जैनकुमार सभा अजमेर ।

महाशय ! नमस्ते,

सुनागया है कि आज आपकी ओरसे कोई विज्ञापन निकला है परन्तु इस वक्त (मध्यान्हके १२ बजे) तक हमारे पास उसकी प्रति नहीं आई है अतः कृपा कर १ प्रति इस पत्रके पाते ही शीघ्र भेजदेवें ।

भवदीय जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर ।

यद्यपि आर्यसमाजमें विज्ञापन आज प्रातःकालकी पांच बजे ही पहुंच गया था परन्तु समय बढ़ानेके अर्थ जो मन्त्री आर्यसमाजने उपर्युक्त पत्र भेजा तो आपकी विज्ञापनकी एकप्रति पुनः भेज दी गयी ।

आज सन्ध्याको कुंवर साहबका "मूर्तिपूजक,, पर व्याख्यान होना निश्चित हुआ अतः निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया ॥

+ वन्दे जिनवरम् +

मूर्तिपूजन पर व्याख्यान।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवामें निवेदन है कि आज ता० ६ जुलाई सन् १९१२ ईस्वी शनिवारकी सन्ध्याको ८ बजेसे स्थान गोदोंकी नशियांमें श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंहजीका "मूर्तिपूजन,, पर व्याख्यान होगा। अतः सविनय प्रार्थना है कि आप सर्व सज्जन महोदय उक्त समय पर अवश्यमेव पधार कर हम सबको परम अनुगृहीत करिये॥

नोट--हमने आर्यसमाजियोंको शास्त्रार्थका चेलेञ्ज दे रक्खा है। यदि उन्होंने हमारे इसी व्याख्यानके समयमें शास्त्रार्थ करना स्वीकार करलिया तो हम अपने व्याख्यानको बन्द कर उनसे शास्त्रार्थ करनेको चले जांयगे॥

घीसूलाल अजमेरा मन्त्री श्रीजैनकुमारसभा अजमेर।

सन्ध्याको नियत समय पर श्रीमान् स्याद्वादवारिधिवादिगजकेसरी पण्डित गोपालदासजी बरैयाके सभापतित्वमें सभाका कार्यप्रारम्भ हुआ। न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्द्रजीके मङ्गलाचरणस्वरूप एक संक्षिप्त व्याख्यान होनेके पश्चात् कुंवर साहब हर्षध्वनिके मध्य व्याख्यान देनेको खड़े हुये। आपने बड़ी योग्यता और विद्वत्तासे अनेक युक्तियों और प्रमाणों द्वारा मूर्तिपूजन सिद्ध किया॥

कुंवर साहबका व्याख्यान हो ही रहा था कि सिकन्द्राबाद गुरुकुल के अध्यापक पण्डित यज्ञदत्त जी शास्त्री आर्यसमाजियों की बड़ी भीड़ सहित सभामें पधारे और आपने आते ही निम्न पत्र सभापतिजीको दिया॥

ओ३म्

श्रीमन्तो महानुभावाः॥

समुचित शिष्टाचारानन्तरम्—

वयं संप्रति श्रीमतः परिषदि शास्त्रार्थं चिकीर्षया समुत्सुकी भूत्वा समागताः। तदाशां कुर्वाणा वयं कथयामः श्रीमद्भिः शास्त्रार्थः कर्त्तव्यः। देवभाषायां शास्त्रार्थः स्यादथवा भाषायामिति इच्छानुसारेण आज्ञापयिष्यन्तीति--आशां कुर्मः। त्वरया श्रीमानुत्तरयतु—इति प्रार्थयामि।

निवेदको—यज्ञदत्त शर्म्मा शास्त्री आर्यधर्मसेवकः

ता० ६—७—१२

शास्त्रीजीका पत्र प्राप्त होते ही सभापतिजी ने उनको उसी समय शास्त्रार्थ करने की आज्ञा प्रदान की और कुंवर साहब ने अपना व्याख्यान संकोच लिया ॥

न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्द जी द्वारा श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा और आर्यसमाजी शास्त्री पण्डित यज्ञदत्तजीसे जो शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व के विषयमें मौखिक रीति पर हुआ वह इस रिपोर्टके अन्तमें परिशिष्ट नम्बर (ख) में प्रकाशित किया जाता है ॥

रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सर्व उपस्थित सज्जन सभ्य महोदयों की आज्ञानुसार शास्त्रार्थ बन्द किया गया और जय जयकार ध्वनि से सभा समाप्त हुई ।

आज रात्रिको निम्न विज्ञापन आर्य्यसमाजकी ओरसे प्रकाशित हुआ ।

ओ३म्

शास्त्रार्थ को सर्वदा तय्यार ।

यह कितनी हंसीकी बात है कि इस रोशनीके जमानेमें भी हमारे कुछ सरावगी भाई यह समझ बैठे हैं कि हम सर्वसाधारणकी आंखोंमें जिस प्रकार चाहेंगे धूल डाल देंगे, पर यह खयाल उनका सरासर असत्य है । मिथ्या बोलना व लिखना ऐसी खोटी आदत है कि वह मनुष्यको आगा पीछा नहीं सोचने देती और एक झूठके सिद्ध करनेके लिये हजार झूठ बुलवाती है, इसी लिये महाकवि श्री स्वामी तुलसीदास जीने लिखा है कि:—

जाको प्रभु दारुण दुख देहीं, ताकी मति पहिले हरलेहीं ।

छपे हुए विज्ञापनकी मौजूदगीमें यह लिखना कि आर्य्यसमाज शास्त्रार्थ से टालमटोल करता है, कितना सत्य है । सब लोग भले प्रकार जान गये हैं कि शास्त्रार्थसे मुंह सरावगी लोग छिपा रहे हैं, जो बार २ कहने व लिखने पर भी राजी नहीं हुए या आर्य्यलोग जो विना नियम तय किये हुए ही धमसे शास्त्रार्थके लिये आकूदे । अब हजार आडम्बर रचो कि सभाके पश्चात् स्वामी जीने शास्त्रार्थके लिये नहीं कहा और फिर उठकर चले गये, परन्तु जो लोग वहां मौजूद थे वे भले प्रकार जानते हैं कि स्वामीजी और बा० मिट्ठनलाल जी वकीलने एक बार नहीं कई बार शास्त्रार्थ जारी रखनेके लिये कहा और स्वामीजी वहांसे एकदम नहीं आये किन्तु कई मिनट तक जब

तक सारी भीड़ न हट गई, बैठे भी रहे परन्तु जैनतत्व प्रकाशिनी सभा के सभ्य शास्त्रार्थके लिये राजी नहीं हुए-पर नहीं हुए, बल्कि उनके मन्त्री वैद्य चन्द्रसेनजी ने तो अपनी सभ्यताका यहां तक परिचय दिया कि आगे होकर लोगोंसे तालियां पिटवाई और सभाके लिये नादान दोस्तका काम किया, क्योंकि इस कामसे सरावगियोंकी ही निन्दा हुई ॥

गीदड़ वह है जो वार २ कहनेपर भी मुकाबलेके लिये तय्यार नहीं और दूर २ से भवकियें बताते रहें कि देखो मैं सिंह हूं । ता० ३ की रातको ११ बजे विज्ञापन बांटे जिसका समाजने ४ तारीखको दिनके १० बजे पहिले ही उत्तर छपवा दिया और सिंहराजको मन्दिरोंमें ढूंढा, कन्दिरोंमें खोजा, ज्ञान की दुर्बीनसे मुक्ति शिखरकी शिला पर दृष्टि फैलाई, परन्तु सर्वत्र पोल ही पोल नजर आई ।

अब दो दिन बाद फिर कुछ होश सम्भाल ६ तारीखके विज्ञापन पर ५ तारीख छपवा कर १२ घंटेकी मियाद दे शास्त्रार्थको टाला है (यह विज्ञापन ६ ता० को १ बजके १० मिनटपर मन्त्री जैनकुमारसभाको पत्र लिखने पर प्राप्त हुआ) इसीलिये तो हमने लिखा था कि यह छोकरोंका सा खेल कर रक्खा है किसी ज़िम्मेवर आदमीकी ओरसे नोटिस होना चाहिये, परन्तु यह आजतक नहीं किया और मन्त्रीजी अपना छोकरा होना स्वीकार करते हैं ।

ठीक है महाशय ! आप अभी बालक हैं कुछ दिन संसारकी हवा खाइये यह अभिमान आपको गढ़े में गिरायेगा । "स्वामीजी क्यों चले गये ?" यही आपकी बड़ी भारी सभ्यता का नमूना है ।

इसके विषय में आप कुंवर दिग्विजयसिंहजीसे पूछलें कि क्या वे स्वामीजीसे बीसों मनुष्यों के सामने यह नहीं कह आये थे कि "महाराज अब शास्त्रार्थ नहीं हो सका आप तो साधु हैं, महीने भर तक ठहर सक्ते हैं, परन्तु हमें जाना है,, वार २ उत्तर मिलने परभी यह कहे जाना कि "ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व विषय का कुछ उत्तर नहीं मिला,, इसका क्या इलाज है ।

सरावगी लोगों को परिणाम और गुणमें भेद मालूम नहीं है, ईश्वरसत्ता को क्या समझ सक्ते हैं "फिर नोट करलें कि प्रलय ईश्वरक्रिया का ही फल है उसका विरोधी नहीं,, ।

ईश्वर सबका कर्त्ता स्वयं सिद्ध है क्योंकि जो चीज़ बनी हुई है वह बिना

कर्ताके हो नहीं सकती । यदि कोई नादान लड़का यह कहे कि मेरा कोई बाप नहीं तो क्या कोई बुद्धिमान् इसको विना बापके पैदा हुआ मान लेगा, ईश्वर ज्ञानका विषय है वितण्डाका नहीं, किसी कविने कहा है ।

हर जगह मौजूद है पर वह नजर आता नहीं ।
योगसाधनके विना उसको कोई पाता नहीं ॥

ईश्वरका धन्यवाद है कि इन की कलम से ये तो निकला कि जैनतत्व-प्रकाशिनी सभा ने इसलिये इन्कार किया कि उनके पास अच्छे लेखक नहीं थे परन्तु यह केवल टालनेकी बात थी, क्योंकि जब लिखा हुआ पढ़कर सुना दिया जाता तो जो कुछ भूल होती उसी समय ठीक हो सकती थी ।

आर्यसमाजने तो इन की चालाकी की पोल खोलने के लिये ईश्वरसृष्टि कर्तृत्व विषयका नमूना बतलाया था, नहीं तो इस के लिये सब विषय एकसे हैं जिसमें जब चाहो शास्त्रार्थ करलो ॥

पं० मिट्ठनलालजी वकीलके विषयमें मनघड़न्त करने का सबक तो इन्हीं ने घूंटीसे ही सीखलिया है ॥

एक दो दूसरे प्रतिष्ठित लोगों के विषयमें भी मिथ्या खबरें उड़ादीं जिसका हाल जब उनको मालूम हुआ तो इनको बड़ा डांटा ॥

पं० दुर्गादत्तजीके विषय में वे हज़ार खैंचातान करें, यह तो उमरभर की शूल उनके लिये होगई और शम्भुदत्तजी पूर्व सहायक सम्पादक जैनमित्र ज्ञान गोली चलाने वाले और खड़े हो गये । सहारनपुर से एक और तीरन्दाज की खबर आई है । अब आपके कृत्रिम सिंहके बच्चेको पिंजरे में रखिये, क्योंकि हाथियोंकी लड़ाईका समय नहीं है । न ज्ञान गोलेके सामने कृत्रिम सिंह ठहर सकता है न ख़याली लोकशिखर व शिला ।

पहिले वाला शास्त्रार्थ ॥

वैद्य चन्द्रसेनजी मन्त्री जैनतत्वप्रकाशिनी सभाके हस्ताक्षरी पत्रकी जिम्मेवारी पर हुआ था, न कि कुमार सभाके भरोसे पर । अब जब कि लोग टट्टीकी आड़ में हो गये और छोकरों को आगे करदिया तो हमें सारी पोल खोलनी पड़ी ॥

हम फिर भी साफ २ शब्दों में लिखे देते हैं कि आर्यसमाज हर समय शास्त्रार्थ करनेको तइयार है परन्तु कोई अजमेर निवासी प्रतिष्ठित जिम्मेवार सामने आवे, क्योंकि बाहरके आदमियोंने पहिले ही स्वयं तालियां पिटवा कर अपनी असभ्यता का परिचय देदिया है ॥

यदि किसी ऐसे प्रतिष्ठित योग्य पुरुषकी जिम्मेवरीका प्रबन्ध आप नहीं कर सकते हैं तो आप स्वयं ही (बशर्ते कि आप कानूनी तौर पर बालिग़ हों) आकर कल २ बजे दिनके लेखबद्ध शास्त्रार्थ के लिखित नियम तय कर जावें ताकि व्यर्थ नोटिसबाज़ीमें समय नष्ट न हो। यदि कल २ बजे तक आप आर्यसमाजमें आकर शास्त्रार्थके नियम आदि न तय कर जायंगे तो समझा जायगा कि आप लोग शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते केवल विज्ञापनबाज़ी करके पब्लिकको धोखा देना चाहते हैं ॥

जयदेव शर्म्मा मन्त्री—आर्य्यसमाज अजमेर

ता० ६—७—१२

इस कारण कि आर्यसमाज ने अपने उपर्युक्त विज्ञापन में लिखित शास्त्रार्थ करना स्वीकार करलिया था और उस के नियम तय करनेके अर्थ हम लोगोंको कल (दूसरे दिन) आर्य्यसमाजभवनमें बुलाया था अतः उसके इस विज्ञापनका उत्तर विज्ञापन द्वारा प्रकाशित नहीं किया गया। परन्तु उसके इस विज्ञापनमें कई भ्रामक बातें हैं अतः सर्व साधारणके हितार्थ उनका उत्तर प्रकाशित किया जाता है। आर्यसमाजका हम लोगों पर मिथ्या बोलने और लिखनेका व्यर्थ ही गुरुतर दोष लगाकर प्रथम आक्षेप यह है कि हम लोग आर्यसमाजको शास्त्रार्थसे टालमटोल करनेका व्यर्थ ही दोषारोपण करते हैं वह तो शास्त्रार्थको सर्वदा तैय्यार हैं। परन्तु विचारनेकी बात है कि कोई यह कहदे कि मैं इस कामको तैय्यार हूं और निष्प्रयोजन उसमें अड़ङ्गे लगावें तो क्या वह उसके अर्थ तैय्यार समझा जा सकता है। देखिये शास्त्रार्थसे टालमटोल करनेका दोष आर्यसमाज पर लगानेके यह निम्न सहेतु शब्द हैं और विचारिये कि वे कितने सत्य हैं। "अब जो आर्यसमाज किसी योग्य प्रतिष्ठित अजमेर निवासीकी ओरसे शास्त्रार्थकी जिम्मेवारीका विज्ञापन प्रकाशित होने पर शास्त्रार्थ करना चाहती है सो यह उसका डूबते हुए को तिनकेकी शरण लेनेके समान निरर्थक है और इससे उसकी असमर्थता ही प्रगट होती है क्योंकि जब कुमारों के प्रबन्ध द्वारा ही श्रीजैन कुमार सभा अजमेर का प्रथम वार्षिकोत्सव, आर्यसमाजका श्रीजैनतत्वप्रकाशिनी सभासे तारीख ३० जून का मौखिक शास्त्रार्थ निर्विघ्न और शान्ति पूर्वक समाप्त हो गया तो अब डरनेका कारण प्रगट करना सिर्फ टाल टूल ही है।"

हम पर दूसरा दोष यह आरोपित किया गया है कि हम लोग बार बार कहने और लिखने पर भी शास्त्रार्थसे मुंह छिपा रहे हैं। पर यह तो विचारिये कि आर्यसमाजने कब हमको शास्त्रार्थ के अर्थ कहा या लिखा और हम लोग उससे मुंह छिपा गये। हम लोग किसीके ललकारने पर सदैव शास्त्रार्थ के अर्थ उद्यत रहे और हैं जैसा कि सबको हमारे कृत्यों और विज्ञापनोंसे स्वयं प्रगट है। यदि आर्यसमाजको हमारे कृत्य और पिछले विज्ञापनों की बात भूल गयी थी तो कमसे कम उसे हालके ही प्रकाशित "आर्यसमाजकी खुलगयी पोल। शास्त्रार्थके टालमटोल" शीर्षक विज्ञापन की बात तो जरूर याद रहनी चाहिये थी। विचारिये कि उसमें प्रकाशित यह निम्न शब्द शास्त्रार्थ से हमारा मुंह छिपाना प्रगट करते हैं या उस के अर्थ पूर्ण सन्नद्धता। "विश्वास रहे कि जबतक आर्यसमाज लिखित शास्त्रार्थ न करले या शास्त्रार्थ से इन्कार न करदे तबतक हम उसको उसके किसी भी बहाने या टालन टूल से छोड़ने वाले नहीं हैं। यदि आर्यसमाज को यह भय है कि श्रीजैनकुमार सभा शास्त्रार्थका यथोचित प्रबन्ध नहीं कर सकती तो हम अबकीवार आर्यसमाजके नियत किये हुये स्थान, समय, विषय और प्रबन्धमें शास्त्रार्थ करनेको उद्यत हैं। परन्तु हम अपना बहुतसा समय इस शास्त्रार्थकी इन्तजारीमें नहीं नष्ट कर सकते अतः समाजको इस विज्ञापनके पाते ही हमको यह लिख देना चाहिये कि हमारी श्रीजैनतत्वप्रकाशिनी सभा कल कै बजे उसके समाजभवनमें लिखित शास्त्रार्थको आवे।"

स्वामी जी और बाबू मिट्ठनलालजीका सभा में कईवार शास्त्रार्थ जारी रखने के लिये कहना लिखकर सरासर लोगोंको धोखा देना है।

तीसरा मन्त्री चन्द्रसेनजी जैन वैद्यका आगे होकर तालियां पिटवानेका दोष सर्वथा मिथ्या है क्योंकि उन्होंने शास्त्रार्थ प्रारम्भ होनेसे पूर्व एकवार नहीं वरन कईवार तालियां पीटने और जयकार बोलने की सख्त मनाही करदी थी। तालियां वहां पर उपस्थित कुछ मूर्ख लोगोंने पीटी थीं और उस के अर्थ वह खूब धिक्कारे भी गये थे। मालूम नहीं कि कुछ आर्यसमाजियोंके तालियां पीटनेमें अग्रेसर होनेसे उनका क्या अभिप्राय था। उन्होंने अपने स्वामीजीकी जीत समझ कर तालियां पीटी थीं या हार समझ कर।

चौथा दोष वादिगजकेसरीजी को बार बार कहने पर भी मुकाबिले के लिये तैय्यार न होने और दूरसे भभकियें बताकर सिंह बननेका है। मालूम

नहीं कि वह कब समाजका मुकाबिला करनेसे हट गये जिस से कि उस को ऐसा भ्रम हुआ। तारीख ४ को सिंहराजजी सभाके दौरे पर होनेसे नसीराबादमें गर्ज रहे थे। नहीं जानते कि समाजको उन्हें उस दिन मन्दिरों कन्दिरों और मुक्ति शिषर पर खोजनेकी ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ीथी जिससे कि उसने ऐसा कष्ट किया। महात्मन्! उसको जो मन्दिरों, कन्दिरों और मुक्ति शिषर पर सिवाय पोल ही पोलके और कुछ नजर नहीं आता उसका कारण उसके दुर्बीनका भद्दापन है। यदि यथार्थमें उसको वस्तुका स्वरूप देखना और जानना है तो उसे अपनी पहिलेकी रद्दी दुर्बीनको फेंककर सबसे अच्छी दुर्बीनकी परीक्षा कर खरीदना चाहिये तब उसको सब यथार्थ स्वरूप ज्ञात होने लगेगा और हो जायगा॥

पांचवां दोष ६ तारीखके विज्ञापनपर ५ तारीख छापनेका है। महाशय वर! निस्सन्देह ५ तारीखको प्रेसोंमें छुट्टी होनेके कारण विज्ञापन रातोंरात ५ तारीख को छापा जाकर ६ तारीखके प्रातःकाल चार बजे प्रकाशित हुआ। ऐसी दशामें क्या समाज चाहती थी कि हम उस ५ तारीखके लिखे और छापे जाने वाले विज्ञापन पर झूठमूठ ६ तारीख छपा मारते। विज्ञापन तो उसके पास ६ तारीखको प्रातःकाल पांच बजे ही पहुंच गया था, पर हमने उसकी उससे रसीद न लिखायी इससे वह चाहे जै बजे अब उसका पहुंचना प्रकाशित करैं।

छठवां दोष श्रीजैनकुमार सभा के मन्त्री बाबू घीसूलाल जी अजमेरा के नाबालिगपनेका है। मित्रवर! बाबू साहब नाबालिग नहीं वरन कानूनन भी बालिग हैं। अजमेरा जी गवर्मेयट कालेज अजमेरमें शिक्षा पा रहे हैं और शिक्षा प्राप्त करनेकी कुमार ही अवस्था समझी जाती है अतः वह अपने ही समान अन्य शिक्षा प्राप्त करने वाले आदि जैन कुमारोंकी सभाके मन्त्री हैं। समाज इस अवस्थामें उनको छोकरा नहीं समझ सकती। फिर भी पूर्व प्रकाशितानुसार ही "आर्यसमाज को विश्वास रखना चाहिये कि लौंडापन या लड़कपन उमूके ताल्लुक नहीं हुआ करता वरन अक्लके ताल्लुक हुआ करता है। किसका लौंडापन है यह कृत्योंसे पबलिकको स्वयं ही प्रगट है॥"

सातवां दोष घीसूलाल जी के अभिमानपनका है सो मालूम नहीं कि उन्होंने कौनसी अभिमान की बात लिखी या कही। वह तो बराबर संसार में उच्च शिक्षा प्राप्तकर अनुभव और सभ्यता सीख रहे हैं।

आठवां दोष हम लोगों के परिणाम और गुण में भेद न समझने का है। परन्तु विश्वास रहे कि हम लोग भली भांति जानते हैं कि गुण के अवस्था से अवस्थान्तर होने को ही परिणमन (परिणाम होना) कहते हैं। परिणमन दो प्रकार का होता है एक स्वभाव रूप और दूसरा विभाव रूप। शुद्ध द्रव्यका परिणमन उसी रूपमें एकसा हुआ करता है और अशुद्ध द्रव्यका निमित्तानुसार। आर्य्य समाज का ईश्वर शुद्ध द्रव्य है अतः उसकी स्वाभाविक क्रिया में सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व रूप विरोधी परिणमन कदापि नहीं हो सकता। यदि यह कहो कि जिस प्रकार एक मिल में स्टीम की शक्ति भिन्न भिन्न कार्य्य करती है उसी प्रकार ईश्वर रूपी स्टीम संसार रूप मिल में प्रकृति की भौतिक मशीनों से अनेक प्रकार के कार्य्य करती है। सो यह दृष्टान्त सर्वथा विषम है क्योंकि जिस प्रकार एक लोहे को सब ओरों से समान शक्ति रखने वाले चुम्बक पत्थर खींचे तो वह लोहा टससे मस नहीं हो सक्ता। उसी प्रकार जब आर्य्य समाज का शुद्ध अखण्ड, एक रस, सर्व व्यापी और स्वाभाविक क्रिया गुणवाला परमात्मा अपने प्रत्येक प्रदेशसे एकसी हरकत देता (क्रिया उत्पन्न करता) है तो कोई भी परमाणु टस से मस नहीं हो सक्ता और इस प्रकार सब गुण गोबर हो जाने से संयोग और वियोग परमाणुओं में न हो सकने से न तो कोई चीज़ बन ही सकती है और न विगड़ ही। यदि दुर्जन तोष न्याय से थोड़ी देरके अर्थ परमात्मा की क्रिया से ही परमाणुओं में संयोग वियोग होना मानकर पदार्थों का बनना बिगड़ना माना जाय तो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों के प्रलय काल में (जो कि सृष्टि काल के समान ही संख्या में है) प्रकृति के परमाणु कैसे सूक्ष्म (कारण) अवस्थामें वेकार पड़े रहें। इत्यादि। अनेक दूषणों के आने से शुद्ध ब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियामें दो विरोधी परिणमन (गुणकी पर्य्याय) कैसे रह सकती है।

इस संसारको ईश्वर कृत सिद्ध करने के अर्थ किसी समय में इसका अभाव (कारण रूपमें होना) सिद्ध करना होगा क्योंकि जब तक संसार कार्य्य सिद्ध न हो जाय तब तक इसका कर्ता कोई ईश्वर कदापि माना नहीं जा सक्ता और कार्य्य का लक्षण "अभूत भावित्त्वं कार्य्यत्त्वम् , है।

नवां दोष हम लोगों के पास अच्छे लेखक न होनेके कारण लिखित शास्त्रार्थ से इन्कार करने का अपराध स्वयं स्वीकार करने का है पर मालूम नहीं

कि इस विषय में प्रकाशित यह निम्न शब्दों में से किन शब्दों से ऐसा अभिप्राय निकाला गया। "श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाने दोनों पक्षों की ओरसे कहे हुए मौखिक शब्दों की रिपोर्ट पर जोकि दोनों ओरके रिपोर्टरोंने लिखी थी हस्ताक्षर करने से इस लिये इन्कार कर दिया था कि वहां के रिपोर्टर लोग ऐसे संक्षिप्त लिपि प्रणाली में चतुर नहीं थे जोकि कहे हुए शब्दों को अक्षर प्रत्यक्षर लिख सकें और एक भी अक्षर या शब्द चूक जाने से भाव अन्यथा हो जाता है। यदि समाज के प्रस्तावानुसार ही दोनों ओर के तीन तीन रिपोटरों में से प्रत्येक के लेख जांच करके हस्ताक्षर किये जाते तो शास्त्रार्थका सारा समय इसी में नष्टहोजाता" ।

दशवां दोष हम लोगों के रटे हुये "ईश्वर इस सृष्टिका कर्ता नहीं है,, विषय में चालाकी करने का है। मालूम नहीं कि इस विषयमें हमने कौन सी चालाकी की और आर्य्यसमाज यों टालम टूल करता हुआ कैसे सब विषयों में हम से शास्त्रार्थ करने को उद्यत है।

ग्यारहवां दोष हम लोगों का बाबू मिट्ठनलाल जी वकील और एक दो दूसरे प्रतिष्ठित लोगोंके विषयमें मनघडन्त बातें लिखने और मिथ्या खबरें उड़ाने का है क्या समाज इस बातसे इन्कार कर सकता है कि मौखिक शास्त्रार्थके समय स्वामी जी से बाबू मिट्ठन लाल जी ने यह नहीं कहा था कि "महाराज पंडित जी के प्रश्न का उत्तर दीजिये,, और उन्होंने वादगजकेसरी जी के हिस्से के पांच मिनिट धन्यवाद आदि देने के अर्थ मांग लिये थे? नहीं जानते कि हम लोगों ने किन प्रतिष्ठित पुरुषों के विषय में मिथ्या खबरें उड़ायी जिसपर उन्होंने हम लोगों को डाटा।

मालूम नहीं कि हम लोग पण्डित दुर्गादत्त जी के विषयमें क्या खैंचतान कर रहे हैं। क्या यह उनके विषयमें पूर्व ही प्रकाशित निम्न बात मिथ्या है "पं० दुर्गादत्त जी को पूर्व जैन उपदेशक बतलाना सरासर लोगोंकी आंखों में धूल फेंकना है क्योंकि वह पहले आर्यसमाजी थे और उन्होंने समाजमें ३ वर्ष तक उपदेशकीका काम किया था। जब उनको समाज में शान्ति प्राप्त न हुई तब उन्होंने सिर्फ ३ महीने से जैन धर्म की शरण ग्रहण की थी जैसा कि जैनमित्रके ३ अप्रैल सन् १९१२ ई० के अंक १२ वें में पृष्ठ १२ पर प्रकाशित "मैंने जैनधर्म की शरण क्यों ली,, शीर्षक उनके लेख से प्रगट है। वह जैन धर्म के सिद्धान्तोंको अच्छी तरह नहीं जानते थे पर उनका विचार जैन वि-

द्वानोंसे जैन सिद्धान्तोंके अध्ययन करने का या कि इतने में ही ता० ३० जून के शास्त्रार्थमें भारी पछाड़ खानेसे अपने टूटे हुए मानकी मरम्मत करने के अर्थ समाजने उनको जिस तिस प्रकार पुनः आर्य समाजी बनाने का प्रयास किया है।,, शम्भुदत्तजी के पूर्व ही जैनमित्रके सहायक सम्पादक होने का समाज को स्वप्न हुआ होगा और उनकी ज्ञान गोली न मालूम किसपर चल रही है। नहीं जानते कि सहारनपुर के कौन से तीरन्दाज हैं और उनकी तीरन्दाजी किसपर हो रही है। यदि समाज में इस सिंह के बच्चेको बन्द करने की शक्ति है तो सामने मैदानमें आवे और बन्द करे। हम तो यही कहेंगे कि:—

रे गयन्द मद अन्ध! छिनहुं समुचित तोहि नाहीं।
वसिवो अव या विपिन घोर दुर्गम भुहिं माहीं॥
गुरु शिलानि गज जानि नखनसों विद्रावित करि।
गिरि कन्दर महं लखौ गर्जता रोषित केहरि॥

समाजके कागजी अज्ञान गोलोंसे असली सिंह व लोक शिखर और शिला उड़ा देनेका व्यर्थ प्रयत्न फूकोंसे पहाड़ उड़ा देनेके समान अत्यन्त हास्यास्पद है।

बारहवां दोष हम लोगोंके टट्टीके आड़में हो जाने और शास्त्रार्थके अर्थ छोकरोंको आगे कर देनेका है। परन्तु यह कहिये कि श्री जैन कुमार सभा ने कब यह कहा और लिखा कि शास्त्रार्थ हम करेंगे। उसके सब विज्ञापनों से शास्त्रार्थ करने वालेका नाम श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा ही प्रगट होता है फिर नहीं जानते कि आर्य्यसमाज क्यों हम लोगोंके टट्टीके आड़में हो जाने और छोकरोंको शास्त्रार्थके अर्थ आगे कर देनेका दोषारोपण करता है। यदि यह कहो कि इस विषयके विज्ञापन श्री जैनकुमार सभाके नामसे प्रकाशित होते थे इससे ऐसा अनुमान वांधा गया तो क्या किसी पुरुषके ऐसा कहनेसे कि अमुक पुरुष आपसे शास्त्रार्थ करनेको उद्यत हैं आर्य्यसमाज यह समझेगा कि कहने वाला पुरुष ही शास्त्रार्थको उद्यत है यदि ऐसी ही समझ है तब तो हो चुका।

सज्जनो! आपने देखा कि किस प्रकार आर्यसमाजने मिथ्या बातें प्रकाशित कर सर्व साधारण को धोखेमें डालना चाहा है पर इसमें आश्चर्य आप बिलकुल न मानैं क्योंकि जब आर्य्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी

सरस्वतीका यह मन्तव्य है कि दूसरेका खण्डन करनेके अर्थ मिथ्या बोलना उचित है तब उनके अनुयायी हमारे समाजी भाइयों ने वैसा किया तो इसमें अनोखापन ही क्या है !

रविवार ७ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

आर्यसमाजके "शास्त्रार्थको सर्वदा तय्यार" विज्ञापनके अनुसार लिखित शास्त्रार्थके नियम तय करनेको श्रीमान् स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी पंडित गोपालदास जी बरैय्या कुंवर दिग्विजय सिंह जी, न्यायाचार्य पंडित माणिकचन्दजी, बाबू घीसूलाल जी अजमेरा मन्त्री श्री जैनकुमार सभा, पंडित फूलचन्द जी पांड्या मन्त्री जैन सभा अजमेर और चन्द्रसेनजी जैन वैद्य आदि सज्जन आर्यसमाज भवनमें निश्चित समयसे आध घण्टे पूर्व (डेढ़ बजे दिन को) पहुंच गये । अढ़ाई बजेके लग भग नियमादि तय करनेकी बात चीत प्रारम्भ हुई । आर्यसमाजकी ओरसे वैरिष्टर बाबू गौरीशङ्कर जी और वकील बाबू मिट्ठनलाल जी और जैन समाजकी ओरसे कुंवर दिग्विजय सिंह जी बोलनेको प्रतिनिधि नियत हुई ।

शास्त्रार्थका प्रथम नियम यह हुआ कि "यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज अजमेर और श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावह के मध्यमें होगा" ।

दूसरा नियम स्थान और प्रबन्धके विषयमें था । इस कारण कि आर्य समाजने अपने पूर्व प्रकाशित विज्ञापनोंमें श्री जैन कुमार सभाके नियत स्थान और प्रबन्धसे अश्रद्धा प्रगट की थी इस कारण हम लोगोंने अबकी बार शास्त्रार्थका स्थान और प्रबन्ध आर्यसमाजका रखना ही प्रकाशित कर दिया था । अतः हम लोगों की ओरसे यह प्रस्ताव हुआ कि शास्त्रार्थका स्थान आर्यसमाज भवन और प्रबन्ध आर्यसमाजका ही रहै । इसपर आर्य समाजकी ओरसे यह कहा गया कि आर्य भवन छोटा और उसमें स्कूल आदि होनेसे थोड़ी पब्लिक आसकेगी अतः कोई विस्तृत स्थान नियत हो और प्रबन्ध आधा आधा दोनों पक्षोंका रहै । जैन समाजकी ओरसे प्रथममें स्वीकृति और दूसरे विषयमें अस्वीकृति इस कारण प्रकाशित कीगई कि प्रबन्ध दो विरोधी पक्षोंके बीच होनेसे यह बहुत सम्भव है कि कोई पक्ष दूसरेको दूषित करने या शास्त्रार्थको टालनेके अर्थ उलटा प्रबन्ध करके गड़ बड़ी डाले अतः प्रबन्ध अकेले आर्यसमाजके ही जिम्मे रहै क्योंकि उसको

जैनियोंके प्रबन्धसे सन्तोष नहीं। कुछ वाद विवाद होनेके पश्चात् दूसरा नियम इस प्रकार निश्चित हुआ कि "शास्त्रार्थ पब्लिक तौर पर मनैयोंके नौहरेमें होगा और उसका यथोचित प्रबन्ध आर्यसमाज करेगा" ॥ इस नियमके तय हो जानेपर वैरिष्टर साहबने यह कहा कि जब प्रबन्ध हम लोगोंके हाथ है तब हम लोग टिकट निकालेंगे और जिसको चाहेंगे उसको वह देकर भीतर आने देवेंगे। इसपर जैन समाजकी ओरसे विरोध किया गया और कहा गया कि जब शास्त्रार्थ पब्लिक होना निश्चित हो चुका है तब ऐसा नहीं हो सकता कि आप उसमें किसीको आनेसे रोकें और अपने मर्जी के आदमी बुलावें यदि ऐसा ही करना है तो यह शास्त्रार्थ प्राइवेट होगा न कि पब्लिक। वैरिष्टर साहबने कहा कि यदि हम ऐसा न करेंगे तो इकट्ठी हुई पब्लिकके उपद्रवका जिम्मेवार कौन होगा। कुंवर साहबने कहा कि जब जैन कुमार सभाके लौंडोंने इससे पूर्वके दो शास्त्रार्थोंमें पब्लिकका प्रबन्ध बड़ी उत्तमता और शान्तिसे कर लिया तब आपसे योग्य वकील वैरिष्टर और सज्जन आर्य पुरुष वैसा क्यों न कर सकेंगे। वैरिष्टर साहबने कहा कि लौंडोंने जो इन्तिजाम किया उसे हम तसलीम करते हैं और हम लौंडोंसे भी गये बीते हैं लौंडोंके बराबर हमसे इन्तिजाम नहीं हो सकता जिनको मुनासिब समझेंगे उनको ही बुलावेंगे सबकी जिम्मेवारी नहीं ले सकते। रहा पुलिसका इन्तिजाम सो हमको पसन्द नहीं हम लोगोंको खुद अपने पैरों खड़े होकर अपना इन्तिजाम करना सीखना चाहिये। इसपर बहुत वाद विवाद होकर टिकट द्वारा लोगों को भीतर घुसने देने का प्रस्ताव रद्द किया गया ॥

तीसरा नियम शास्त्रार्थ के विषय का था। आर्यसमाज ने "ईश्वर का सृष्टिकर्तृत्व" और "मोक्ष" यह दो विषय उपस्थित किये। कुंवर साहब ने कहा कि एक विषय के निर्णय हो जाने पर दूसरा लेना चाहिये नहीं तो घसड़बा होजाने से एक भी तय न हो सकेगा। कुछ देर तक विवाद होने के पश्चात् यह नियम इस प्रकार निश्चित हुआ कि "शास्त्रार्थ का विषय यह है कि ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता है या नहीं जिसमें कि आर्य्यसमाज का पक्ष यह है कि इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है और जैनियों का पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं है ॥

चौथा नियम शास्त्रार्थ के समय का था। आर्य्य समाज का कहना यह

था कि शास्त्रार्थ परसों से हो और जैन समाज का कहना यह था कि जब आर्यसमाज शास्त्रार्थ को सर्वदा तय्यार है तो एक दिन क्यों नष्ट किया जावे वैरिष्टरसाहब ने कहा कि हमलोग इतना शीघ्र प्रबन्ध नहीं कर सकते क्योंकि हमको पानी फर्श रोशनी आदि का प्रबन्ध करना होगा। इस पर कहा गया कि यह प्रबन्ध ऐसा प्रबन्ध नहीं जिसमें कि एक दिन व्यर्थ नष्ट किया जावे। वैरिष्टर साहब ने कहा कि एक दिन में यह प्रबन्ध नहीं हो सकता इसपर बाबू प्यारेलाल जी आदि प्रतिष्ठत जैनों ने पानी फर्श रोशनी आदि का प्रबन्ध अपने जिम्मे लेने कहा पर आर्यसमाज अपनी ही जिद पर कायम रहा और एक भी बात न सुनी। हम लोगों ने जिस प्रकार आर्य समाज की और सब बातें मान लीं और मानते जाते थे उसी प्रकार समय के विषय में उसकी परसों की बात मान लेने पर हमलोगों को विश्वस्तनीय रीति से इस बात का पता लग गया था कि आर्य समाज एक दिन की बीच में मोहलत चाहकर मैजिस्ट्रेट को फिसाद होने से शान्ति भंग का अन्देशा दिखा उसके हुक्म से शास्त्रार्थ बन्द कराना चाहता है। पर हमलोगों को यह बात कदापि इष्ट न थी—हम लोग चाहते थे कि शास्त्रार्थ हो ही जाय इस कारण हम लोग 'शास्त्रार्थ कल से ही प्रारम्भ हो इस बात पर डटे रहे और आर्यसमाज की हर एक बात को जो कि उसका मेम्बर या पैरोकार शास्त्रार्थ परसों से प्रारम्भ होने के विषय में कहता था युक्ति और प्रमाणों से खण्डन करते रहे।

इस वाद विवाद के समय में अजमेर के आर्यसमाजियों ने अपनी असभ्यता की पराकाष्टा दिखला डाली। वह लोग चाहते थे कि हमलोग उनसे तंग होकर किसी प्रकार आर्यसमाज भवन से उठकर चले जायँ जिससे कि उनको हमारे शास्त्रार्थ से हट जाने की बात प्रकाशित करने का मौका मिले। उन्होंने इसके अर्थ ऊपरके छज्जोंसे मिट्टी सिर पर डालना, फर्श उठाना लोगोंसे भिड़ना और अपने प्रधान वैरिष्टर साहबके रोकने पर भी बोलते जाना आदि कार्य्य किये पर शोक कि हम लोगोंके शान्तिता पूर्वक उनके सह लेनेसे वे सब व्यर्थ गये। वैरिष्टर साहबका व्यवहार भी अन्तमें आक्षेपणीय रहा और उन्होंने कई ऐसी बातें कहीं जो कि किसी सभ्य पुरुषको अपने घरपर बुलानेसे आये हुये सज्जनोंसे कदापि न कहना चाहिये थीं। जब इन उपायोंसे काम न चला तब यह कहा गया कि चलो अभी शास्त्रार्थ कर-

लो इसपर हमारी ओरसे यह उत्तर मिला कि नियम तय कर लीजिये हम अभी शास्त्रार्थ करनेको प्रस्तुत हैं पर विश्वास रहे कि हम लोग नियम विरुद्ध कोई कार्य कदापि नहीं कर सकते। पूर्व निश्चितानुसार बाहर स्वामी दर्शनानन्द जीका व्याख्यान प्रारम्भ हुआ और हम लोगोंको बाहर चलकर व्याख्यान सुननेको कहा गया पर हम लोगोंने साफ कह दिया कि हम लोग नियम तय करने आये हैं न कि व्याख्यान सुनने। हम लोगोंको डरानेके लिये पुलिस बुलाई गयी और उसने आते ही हम लोगोंसे पूछा कि आप लोग कब तक यहां ठहरेंगे। जबाव दिया गया कि जब तक शास्त्रार्थके नियम न तय हो जाय या आर्यसमाज हम लोगोंको चले जानेकी आज्ञा न दे। जब इन किन्हीं उपायोंसे हम लोग हटते न दिखाई दिये तो वैरिष्टर साहबने अन्तमें आज्ञा दी कि "सभा वर्खास्त की जाती है अब आप लोग निकल जाइये"। निदान प्रधानकी आज्ञा शिरोधार्यकर हम लोग समाज मन्दिरसे अपने आर्यसमाजी भाइयोंसे प्रेम पूर्वक "जय जिनेन्द्र" "जय जिनेन्द्र" कहते हुये उठ आये और जयजयकार ध्वनिके मध्य अपने स्थानपर आ पहुंचे॥

चन्द्रवार ८ जुलाई १९१२ ईस्वी।

आज आर्यसमाजकी ओरके निम्न दो (उसकी कमजोरी और दोष छिपाने वाले) विज्ञापन प्राप्त हुये।

ओ३म्।

शास्त्रार्थसे कौन भगा।

जैसा कि हमारा अनुमान था आखिर हमारे सरावगी भाइयोंने गुलगपाड़े और वृथा हठसे शास्त्रार्थको टाल ही दिया और इन ४ बातोंमें से एक भी बात मंजूर नहीं की।

(१) यदि शास्त्रार्थके प्रबन्धका कायम रखने व हुल्लड़ रोकनेके लिये टिकट द्वारा प्रबन्ध मंजूर हो तो समाज ता० ८ को ही शास्त्रार्थका प्रबन्ध करनेके लिये तय्यार है॥

(२) यदि टिकट द्वारा नहीं चाहते और अंधाधुन्ध आदमियोंकी भीड़ करना मंजूर हो तो अपनी जिम्मेवारीपर प्रबन्ध करें आर्यसमाजके लोग जहां आप कहेंगे शास्त्रार्थको चले आवेंगे॥

(३) यदि समाजकी जिम्मेवारीपर ही जोर है जो ९ तारीखको समइयोंके नोहरेमें कानूनी प्रबन्ध द्वारा समाज शास्त्रार्थ कर सकता है॥

(४) यदि "सर्वदा" शब्दपर ही आग्रह है तो समाज अभी करनेको तय्यार है, परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने एक न मानी और जय जिनेन्द्र आदि शब्दोंसे शोर गुल मचाते हुए समाज भवनसे चले गये ॥

इसका व्यौरेवार हाल कल आपकी सेवामें पहुंच जायगा, अफ़सोस है कि छः घण्टेकी मेहनत पर अपनी हठधर्मीसे इन्होंने पानी फेर दिया।

जयदेव शर्मा, मंत्री आर्यसमाज, अजमेर।

ता० ७-७-१९१२ समय १० बजे रात

—:0:—

ओ३म् ॥

नकली सिंहका असली रूप प्रकट होगया।

सर्व साधारणको विदित ही है कि कई दिनोंसे सरावगी भाइयोंने "ईश्वर सृष्टि का बनाने वाला नहीं है" इसपर कोलाहल मचा रक्खा था कि जिसपर स्वामी दर्शनानन्दजी व पं० यज्ञदत्तजी शास्त्री दो बार उनकी ही सभामें जाकर उनके ही नियमोंकी पाबन्दी करते हुए उनकी सब दलीलों को काटकर पब्लिकमें ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता सिद्ध कर आये, जिसके प्रभावसे दो जैनियोंने जैनधर्म त्याग दिया, इससे चिढ़कर हमारे सरावगी भाइयोंने कई कठोर विज्ञापन निकाले जिन सबका यथोचित उत्तर समय २ पर दिया गया और जब इन लोगोंने शास्त्रार्थसे इनकार कर दिया तो स्वामी दर्शनानन्दजी पंजाबको चले गये इनके जाते ही मैदान खाली समझ इन्होंने शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज फिर दिया, जिसके उत्तरमें इनको नियमानुसार लिखित शास्त्रार्थ किसी मोअज्जिज़ जिम्मेवर अजमेर निवासी द्वारा करनेको लिखा गया और अन्तमें ७ तारीख़की दोपहरको आकर नियम तय कर लेनेको कहा गया, परन्तु इनको शास्त्रार्थ करना तो मंजूर ही न था केवल वितण्डा और हुल्लड़ मचाना था इस लिये सैकड़ों दुकानदारोंको साथ लेकर समाज भवनमें चले आये जैसे तैसे दो नियम तो थोड़ीसी हुज्जतके बाद तय होगये, परन्तु इतनेमें ही स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज पञ्जाबसे आगये बस अब क्या था देखते ही हक्के बक्केसे रह गये और सोचने लगे कि अब शास्त्रार्थ विना किये पीछा नहीं छूटेगा, अतएव प्रबन्धके नियमपर और सारा बोझा आर्यसमाज पर डालने लगे समाजने उसको इस शर्तपर मंजूर किया कि वह उचित प्रब-

न्ध करके ९ तारीखको शास्त्रार्थ आरम्भ करदे परन्तु इन्होंने शास्त्रार्थ टालनेके लिये यही जिद्द पकड़ली कि शास्त्रार्थ ८ तारीखको ही हो, ९ तारीख हम मंजूर नहीं करेंगे, समाजने साढ़े आठ बजे रात तक बैठे रहकर इनको बहुत कुछ समझाया कि यदि ८ ही तारीखको शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो जो स्थान हमारे पास मौजूद है उसमें हुल्लड़ न होने देनेके कारण टिकट द्वारा प्रबन्ध हम कर सकते हैं, इन्होंने कहा कि हमको ऐसा प्रबन्ध कदापि मंजूर नहीं है जितने आदमी आयें आने दो, समाजने इसमें लड़ाई दंगेका भय समझ कर उन्हींसे कहा कि यदि ऐसा मंजूर नहीं है और आपको जल्दी है तो आप प्रबन्ध कीजिये और हमें शास्त्रार्थके लिये जहां बुलाओगे वहां आ जावेंगे। परन्तु इसको भी उन्होंने मंजूर नहीं किया समाजने बीसों बार बड़ी नम्रतासे ९ तारीखको शास्त्रार्थ करनेके लिये कहा परन्तु उन्होने एक भी नहीं मानी सो नहीं मानी और बहुत शोर गुल मचाते रहे जिससे सब लोगों को निश्चय होगया कि इनकी मन्शा हुल्लड़ मचा शास्त्रार्थको टालनेकी है (जैसा कि उस समय उपस्थित भाइयोंने देखा भी होगा) उसी समय "राय सेठ चांदमलजी साहब जैनी आनरेरी मैजिस्ट्रेट" भी पधारे और उन्होंने बहुत गुल गपाड़ा देखकर यह सलाह दी कि शास्त्रार्थ "शहरसे दूर हो और और टिकट द्वारा हो, नहीं तो हल्ले गुल्लेमें शास्त्रार्थ कभी भी नहीं होसकेगा और आपसमें तनाजा होनेका अन्देशा है, इसपर बाबू मिट्ठनलालजी वकीलने खड़े होकर कहा कि हमें जो कुछ प्रबन्ध सेठ साहब करदें मंजूर है, परन्तु हमारे सरावगी भाई चिल्लाने लगे कि हम सेठ साहबको नहीं जानते जो कुछ हम कहते हैं वही होना चाहिये । इसपर सेठ साहब उठकर चले गये, फिर भी इसी बात (नियमों) पर वादानुवाद होता रहा और सरावगी भाई बहुत ही सभ्यताका परिचय देते रहे, जब शोरगुल बहुत ही बढ़गया और समाजके विज्ञापनमें लिखे "सर्वदा" शब्दपर बहुत जोर देने लगे तो समाजने बिछौने वगैरहका चौकमें प्रबन्ध कर उसी वक्त शास्त्रार्थ करनेको कहा, परन्तु इसपर भी राजी न हुए (होते कहांसे उन्हें तो सिर्फ हुल्लड़ मचा कर अपना पिण्ड छुड़ाना था) उनको बहुत समझाया गया परन्तु उन्होंने एक न मानी ।

जब चिल्लाने लगे कि जिसको सुनकर पुलिस आगई और पूछने लगी

कि यह जलसा कबतक रहेगा, हुल्लड़ मिटना चाहिये। तब प्रधान जी ने सरावगी भाइयों से फिर कहा कि अलग कमरे में चले चलिये वा इन नीचे लिखी बातोंमेंसे एकबात मंजूर करलीजिये ॥

(१) यदि शास्त्रार्थके प्रबन्ध को कायम रखने व हुल्लड़ रोकनेके लिये टिकट द्वारा प्रबन्ध मंजूर हो तो समाज ता० ८ को ही शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करनेके लिये तय्यार हैं ॥

(२) यदि टिकट द्वारा नहीं चाहते और अन्धाधुन्ध आदमियों की भीड़ करना मंजूर हो तो अपनी जिम्मेवरीपर प्रबन्ध करें आर्य्यसमाजके लोग जहां आप कहेंगे शास्त्रार्थको चले आयेंगे ॥

(३) यदि समाजकी जिम्मेवरीपर ही जोर है तो ९ तारीखको समइयोंके नोहरेमें कानूनी प्रबन्ध द्वारा समाज शास्त्रार्थ कर सकता है ॥

(४) यदि "सर्वदा" शब्दपर ही आग्रह है तो समाज अभी करनेको तय्यार है।

परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने एक न मानी और जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र आदि शब्दोंसे शोर गुल मचाते हुए समाज भवनसे चले गये !

अब सर्व साधारणको उपरोक्त बातोंसे भली प्रकार प्रकट होगया होगा कि हमारे सरावगी भाइयोंमें सभ्यता कहांतक है ॥

आर्य्यसमाजके सैकड़ों आदमी इनकी सभामें शास्त्रार्थमें शामिल होते रहे, परन्तु कभी ऐसा दुराग्रह नहीं किया, जो नियम उन्होंने रक्खा उसी में हां करदी। क्या हमारे सरावगी भाई इसमें अपने मतकी बड़ाई समझते हैं। समझदारोंके नजदीक तो अपनी बड़ी हंसी कराई है। हम तो फिर भी कहते हैं कि सभ्यता पूर्वक जहां चाहो वहां शास्त्रार्थ करलो यों असभ्य समुदायको इकट्ठा कर हल्ला मचाना और अपनी झूठी शेखी बघारना दूसरी बात है ॥

जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज, अजमेर

ता० ८-७-१२

—:o:—

सज्जनो ! आपने देखा कि आर्यसमाज ने किस प्रकार सर्वसाधारण को धोखेमें डालने के अर्थ उपर्युक्त विज्ञापनों में मिथ्या बातें लिखीं हैं।

तारीख़ ३० जून और ६ जौलाई को जो दो मौखिक शास्त्रार्थ यथाक्रम स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती और पंडित यज्ञदत्त जी शास्त्री से श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके साथ ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्वके विषयमें बड़ी सफलता और जैनधर्म की प्रभावना से हुये थे कदाचित उसीसे समाज ने यह पूर्व ही अनुमान बांध रक्खा होगा कि जैन लोग शास्त्रार्थ को टाल देंगे। शेम!

स्वामी दर्शनानन्द जी और पंडित यज्ञदत्त जी शास्त्री ने हम लोगोंकी दलीलोंका खण्डन करते हुये ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता कैसा सिद्ध किया यह उस समय में उपस्थित सज्जन या उनके शास्त्रार्थ को पढ़ने और सुनने वाले सज्जनों को भली भांति प्रकट है। यदि सिद्ध ही कर आते तो यों लिखित शास्त्रार्थ में समाज की ओरसे अडङ्गे लगाये जाकर टालमटोल क्यों की जाती।

पंडित दुर्गादत्त जी ने "जैनधर्म परित्याग" विज्ञापन क्यों निकाला इसको समाज का दिल ही जानता है और स्वयं पं० दुर्गादत्त जी के कहने से सर्व साधारण को भी अब अविदित नहीं है। विश्वास रहे कि सत्य बात अन्त में प्रकाशित हुये बिना नहीं रहती।

हम लोगों के विज्ञापनों का समाज ने कैसा उत्तर दिया है वह दोनों ओरके विज्ञापनों को आमने सामने रखकर विचार पूर्वक पढ़ने वालोंसे छिपा हुआ नहीं है और न रहेगा।

जब समाज ने सर्व साधारणको यह बात प्रकाशित कर धोखा देना चाहा कि जैन लोग लिखित शास्त्रार्थ से इन्कार कर गये तब हमको सर्वसाधारण के हितार्थ पुनः चेलेञ्ज देना पड़ा न कि इस कारण कि आपके स्वामी दर्शनानन्द जी अजमेर छोड़ गये थे। स्वामी जी की विद्या और बुद्धिका तो हम लोग गत कार्तिक शुक्ला द्वितीया सम्वत् १९६८ विक्रमी के दिवस से जब कि इटावह आर्य्यसमाजके वार्षिकोत्सवपर शङ्का समाधान के दिवस उनका कुंवर दिग्विजयसिंहजीसे ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वके विषयमें उत्तर प्रत्युत्तर हुआ था। भलीभांति जानते थे और गत ३० जूनको तो बिल्कुल ही जान गये थे और इसीसे तो स्वामीजीको अपनी प्रतिष्ठाका बड़ा ख्याल था॥

यदि हम लोगोंको शास्त्रार्थ करना मंजूर न होता तो श्रीजैनकुमारसभा के वार्षिकोत्सवके पश्चात् इतने दिन खोकर समाजके पीछे यों उस की सभी बातें मानते हुए क्यों पड़े रहते॥

आर्यसमाजके भवनमें हम लोग अपने साथ सर्व साधारण (जिनको आर्य समाज मामूली दूकानदार समझता है) की भीड़ नहीं ले गये थे वरन हम लोगोंके सौभाग्यसे वह लोग हमारे बिना बुलाये स्वयं पहुंच गये थे। जब कि समाज इतने लोगोंके सामनेकी बातों को यों अन्यथा प्रकाशित करनेका साहस करता है तब न मालूम हम लोगों के ही अकेले होने पर वह क्या कर गुजरता। चाहा तो समाजने बहुत था कि हम लोग अकेलेमें ही नियम तय करें पर यह बहुत अच्छी बात हुई कि हम लोग उसकी वैरिष्टरी चालोंमें नहीं आये॥

जब कि समाजने हम लोगों के पहुंचने से बहुत पूर्व ही एक लम्बे चौड़े साइनवोर्डमें टगना (लम्बा बांस) लगाकर मोटे मोटे हरूफोंमें यह लिख कर हम लोगोंके सामने रख छोड़ा था कि "आज सन्ध्याको स्वामी दर्शना-नन्द जीका व्याख्यान होगा" तो वह यह कैसे कह सकता है कि दो नियमों के तय हो जाने पर हम लोगोंको दर्शनानन्द स्वामीका पंजाबसे आना (उन के छतसे नीचे उतर कर दर्शन देनेसे) प्रगट हुआ जिससे कि हम लोग हक्के बक्के रहगये और शास्त्रार्थसे डरगये। यदि दुर्जनतोषन्यायसे समाजका कहना ही थोड़ी देरको मानलिया जाय तो क्या हम लोग समाजको पुनः चेलेंज देनेसे पूर्व यह नहीं जान सकते थे कि समाज अपने एकमात्र आधार-भूत स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती महाराज को एकबार हम लोगों से पुनः शास्त्रार्थ करनेको उपस्थित करेगा और स्वामीजीको निज मान रक्षार्थ प्रत्यक्षमें "हम शास्त्रार्थको उद्यत हैं" ऐसा अगत्या दिखलाना ही पड़ेगा॥

शास्त्रार्थके प्रबन्धका सारा बोझा अबकीबार आर्यसमाज पर ही रखने को हम पूर्व ही प्रकाशित करचुके थे तब यह कैसे सम्भव है कि स्वामीजीको देखकर शास्त्रार्थ टालनेके अर्थ हमने ऐसा किया। आर्यसमाजका लेख वदतो-व्याघात दोषसे दूषित है क्योंकि उसका लिखना है कि दो नियमोंके तय हो जाने पर स्वामीजी आये और उनको देखकर हम लोग प्रबन्धका बोझा आर्यसमाज के सिर पटकने लगे। परन्तु दूसरे नियम के तय होने पर आर्यसमाज के जिम्मे प्रबन्धका बोझ जा पड़ा था क्योंकि दूसरा नियम यह था कि "शास्त्रार्थ पबलिक तौर पर मजैयोंके नौहरे में होगा और उसका यथोचित प्रबन्ध आर्यसमाज करेगा" आर्यसमाजको कुछ तो पूर्वापर विचार और लिखना चाहिये। क्या उसने यह समझ लिया है कि पब्लिक इतनी मूर्ख है

कि जो कुछ हम लिखेंगे उस पर वह आंख मूंदे विश्वास करलेगी ॥

हम लोगों के तारीख ८ से ही शास्त्रार्थ प्रारम्भ करदेनेकी जिद्द करने का कारण यह था विश्वस्तनीय रीतिसे इस बात का पता हम लोगों को लग गया था कि आर्य्य समाज एक दिन की बीच में सी-हलत चाहकर मैजिष्ट्रेट को आपस में फिसाद हो जाने से शान्ति भङ्गका अन्देशा दिला उसके हुक्म से शास्त्रार्थ बन्द कराना चाहता है। पर हम लोगों को यह बात कदापि इष्ट न थी हम लोग चाहते थे कि शास्त्रार्थ हो ही जाय इस कारण आर्य्यसमाजी समस्त युक्तियों का जो कि उसने तारीख ९ से शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने के विषय में दी थीं खण्डन करते हुये हम लोग अपनी बात पर डटे रहे।

आर्य्य समाजका टिकट द्वारा लोगों को भीतर आने देने का प्रबन्ध शास्त्रार्थ के पतिज्ञक होने से अस्वीकार किया गया और यह बात आर्य्य समाजको भी बाद में स्वीकृत हुयी।

अपने जिम्मे प्रबन्ध हम लोगों ने आर्य्य समाज के पूर्व ही अविश्वास और असन्तोष प्रगट करने से नहीं लिया।

शोर गुल मचाने की बात बिल्कुल मिथ्या है। निस्सन्देह आर्य्य समाजकी ओर से बात चीत करने को नियत प्रतिनिधि बैरिष्टर साहब के सिवाय जब और कोई आर्य्य समाजी सभामें खड़े होकर स्पीच झाड़कर लोगों को धोखे में डालना चाहता था तब हमारी ओर से चन्द्रसेन जैन वैद्य और फूल चन्द्रजी पांडया सभामें खड़े होकर शान्ति से उन की मिथ्या बातों का प्रतिवाद कर देते थे। सर्व साधारण से यह छिपा नहीं कि अपने प्रेसीडेन्टके बार बार रोकने पर भी हमारे समाजी भाई इस भड़गड़ मचाने के काम से बाज नहीं रहते थे।

राय सेठ चान्दमल जी साहब जैनी रईस व आनरेरी मैजिष्ट्रेट को आर्य्य समाजियों ने निज प्रयोजन सिद्ध्यर्थ Cat's Paw (बिल्लीका पन्जा) बनाना चाहा था पर जब सेठ जी साहब ने सब मामला समझ लिया तो अपने बार बार मिट्ठनलाल जी और बैरिष्टर साहब के दबाने से दिक्क होकर उठकर चले गये।

चौक में बिछौना वगैरह स्वामी दर्शनानन्द जी के पूर्व निश्चित व्याख्या-

न होने के अर्थ समाजने बिछवाये थे न कि हम लोगों से शास्त्रार्थ करने को। निस्सन्देह आर्य्य समाज ने यह कहा था कि यदि आप अभी शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो बाहर चलिये पर हम लोगों ने यह कहा कि हम लोग अभी प्रस्तुत हैं पर पहिले नियम तय कर लीजिये क्योंकि हम अनियम काम नहीं कर सके।

पुलिस अपने आप नहीं आयी वरन आर्यसमाज के बुलाने से आयी और उसने हम लोगों से पूछा कि आप लोग कब तक यहां ठहरेंगे। जवाब दिया गया कि जब तक शास्त्रार्थ के नियम न तय हो जांय या आर्य्य समाज हम लोगों को चले जानेकी आज्ञा न दे। हम लोग शान्त बैठे थे इसलिये पुलिस कुछ न कर सकी।

अलग कमरेमें अकेले नियम तय करनेके अर्थ चलनेको कहना हम लोगों को अपने स्थानसे उठानेके अर्थ था जिसको समझकर हम लोग वहीं डटे रहे।

आर्य्यसमाजकी कही हुई चारों बातें प्रथम टिकट द्वारा प्रबन्ध करना शास्त्रार्थके पब्लिक होने द्वितीय अपने जिम्मे प्रबन्ध लेना आर्य्यसमाजके पूर्व ही हम लोगोंके प्रबन्धसे अविश्वास और असन्तोष प्रगट करने तृतीय एक दिन व्यर्थ नष्ट होने और शास्त्रार्थ पुनः न हो सकनेके भय और चतुर्थ विना नियम तय किये हुये अनियम कार्य करनेके कारण अनुचित होनेसे स्वीकृत न की गई। तीसरी बातमें आर्य्यसमाजने 'अपने प्रबन्ध द्वारा' के स्थानमें 'कानूनीप्रबन्ध द्वारा' ये शब्द लिख दिये हैं अर्थात् 'अपने' शब्द के स्थानमें कानूनी शब्द कर दिया है। हम लोगोंसे समाज मन्दिरमें कानूनी प्रबन्धका कोई जिकर नहीं हुआ और समझमें भी नहीं आता कि कानूनी प्रबन्धका क्या अर्थ समाज करता है। यदि इससे पुलिसका प्रबन्ध इष्ट है तब तो हमारा यह पहिले ही कहना था कि पुलिसका प्रबन्ध (जैसा कि हम लोगोंने किया था) रहे जिसपर आर्य्यसमाजको अपने पैरों खड़े होने (अपना प्रबन्ध स्वयं करने) के कारण इन्कार थी। यदि इससे मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करना इष्ट है तो उसकी कोई आवश्यकता न थी क्योंकि प्रथम ही दो मौखिक शास्त्रार्थ (जिनमें कि लिखित शास्त्रार्थसे विशेष शान्ति भङ्गकी आशङ्का रहती है) विना मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा लिये ही बड़ी सफलता और शान्तिसे हो चुके थे। यदि मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करनेकी आवश्यकता ही थी तो पहिले आर्य्य समाजने क्यों न लिखा या कहा।

हम लोग समाज मन्दिरसे अपने आप उठकर नहीं चले आये वरन आर्यसमाजी प्रधान वैरिष्टर साहबके निकल जानेके जनरली हुक्मसे।

पब्लिक आर्यसमाजकी सभ्यता और उसकी शास्त्रार्थके अर्थ तैय्यारीको इसी बातसे भली भांति जानती है कि वह उसके समुदायको असभ्य और हल्ला गुल्ला मचानेवाला करार देकर उसकी तौहीन कर रहा है और किसी को शास्त्रार्थमें आने न देकर कुल्हियामें गुड़ फोड़ना चाहता है।

जो हो। आज प्रातःकाल श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाके कार्यकर्तागण उनके उपर्युक्त दोनों विज्ञापनोंमें प्रकाशित तीसरे नियमपर किसी प्रकार शास्त्रार्थ चलानेको सहमत होकर पुनः आर्यसमाज भवनमें शास्त्रार्थके शेष नियम तय करनेको गये जिसपर समाजके मन्त्री जी ने सन्ध्याको हाजिर होनेका हुक्म दिया पर सन्ध्याको हम लोगोंके पहुंचनेपर इस विषयमें कुछ बात चीत करनेसे बड़ी रुखाई के साथ इन्कार कर दिया।

आर्यसमाजके उपर्युक्त दोनों विज्ञापनोंके उत्तरमें सर्व साधारणके भ्रम निवारणार्थ निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

आर्यसमाजकी झूंठी सफाई।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवामें निवेदन है कि आर्य्यसमाजके ६ जुलाईके "शास्त्रार्थको सर्वदा तय्यार" शीर्षक विज्ञापनके अनुसार हमारी श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा कल १॥ बजे दिनके आर्यसमाज भवनमें लिखित शास्त्रार्थके नियम तय करने के लिये गई थी और सर्व नियमोंका तय करना आर्यसमाजकी इच्छानुसार ही रखनेपर भी आध घंटेमें तय होजाने वाले सब नियम आर्यसमाजकी टालमटोलसे ६ घंटेमें भी तय न हुए। केवल तीन ही नियम तय हो पाये जो कि निम्न लिखित हैं:—

लिखित शास्त्रार्थके नियम।

१—यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज अजमेर और श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा इटावहके मध्यमें होगा।

२—शास्त्रार्थ पब्लिक तौरपर नसियोंकि नोहरे में होगा और उसका यथोचित प्रबन्ध आर्यसमाज करेगा॥

३—शास्त्रार्थका विषय यह है कि "ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता है या नहीं"

जिसमें कि आर्यसमाजका पक्ष यह है कि "इस सृष्टिका कर्त्ता ईश्वर है" और जैनियोंका पक्ष यह है कि "ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता नहीं है"।

चौथा नियम शास्त्रार्थके समयके विषयमें था जिसमें कि आर्यसमाजका कहना यह था कि शास्त्रार्थ परसोंसे शुरू हो और श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाका कहना यह था कि शास्त्रार्थ कलसे ही शुरू हो। इस विषयपर कई घंटों तक बहस होती रही पर यह नियम तय न हुआ और प्रधान बाबू गौरीशङ्करजी बैरिष्टरके इस कथनानुसार कि "सभा बर्खास्त की जाती है आप लोग जाइये" हम लोग उठ कर चले आये परन्तु अब आर्यसमाजने "शास्त्रार्थसे कौन भगा" और "नकली सिंहका असली रूप प्रकट होगया" शीर्षक विज्ञापनोंमें यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है कि जैन लोग शास्त्रार्थसे पीछे हट गये।

समाजका ऐसा लिखना सर्वथा मिथ्या और पब्लिकको धोका देकर अपने ऊपर आये हुए शास्त्रार्थसे हटनेके दोषकी झूंठी सफाई करना है।

हमारी श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभा आर्यसमाजकी किसी भी टालम टोलपर ध्यान न देकर उससे नियमानुसार लिखित शास्त्रार्थ करनेको सर्वथा और सर्वदा उद्यत है और जब कि आर्यसमाज भी अपनेको उसके लिये तय्यार प्रगट करता है तो हमारी श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा उसके विज्ञापनोंमें प्रकाशित तीसरे नियमके अनुसार ही ९ जुलाईको पब्लिक शास्त्रार्थ करनेको तय्यार है।

अतः समाजको उचित है कि वह शास्त्रार्थके शेष नियम आज ही तय करदे जिससे कि शास्त्रार्थ अति शीघ्र ही प्रारम्भ होजाय। ऐसा न होनेसे यह समझा जायगा कि आर्यसमाज शास्त्रार्थ करना नहीं चाहती॥

घीसूलाल अजमेरा मन्त्री

श्री जैन कुमार सभा अजमेर ता० ८ जुलाई सन् १९१२

—:०—

हमारे उपर्युक्त विज्ञापन का उत्तर आर्य्य समाज की ओर से आज रात को यह प्रकाशित हुआ।

ओ३म्॥

अब पछताये होत का जब खुलगई सारी पोल.

जिन लोगों ने कल समाज मंदिर में हमारे सरावगी भाइयों की करतू-

तों को देखा था तथा हमारे और उनके विज्ञापनोंको गौरसे पढ़ा है उनको भली प्रकार प्रकट होगया होगा कि सच्चा कौन और झूठा कौन । छः घंटेमें जो जो बहस हुई उस सबको हमारे सरावगी भाइयोंने अपने विज्ञापन में से उड़ा दी परन्तु फिर भी यह उन्हें स्वीकार ही करना पड़ा कि उन्होंने ९ तारीखके शास्त्रार्थ को मंजूर नहीं किया सच्ची बात वही है जो कि समाज के विज्ञापन में छाप दी गई है कि चारों बातों में से इन्होंने एक भी बात मंजूर नहीं की.

क्या खूब अब सरावगी भाइयोंने ८ तारीखकी शामको ५ बजे यह प्रकाशित कर अपनी सफाई बताई है कि हम आर्य्य समाजियोंकी मर्ज़ीके मुआफिक ९ तारीखको ही शास्त्रार्थ करना मंजूर करते हैं । क्यों महाशय ! क्या ९ तारीख को शास्त्रार्थ करने का आर्य्य समाजियोंका कोई मुहूर्त था ? नहीं, ७ तारीखको ही यदि यह कह दिया जाता कि हम ९ तारीख ही मंजूर करते हैं तो क्या सरावगियों का कुछ बिगड़ जाता । असली बात यह है कि आर्य्य समाज १ दिन बीच में इसलिये लेता था कि मजिस्ट्रेटसे आज्ञा लेकर भीड़ भाड़ का ऊधम रोकने के लिये पुलिस का पूरा २ प्रबन्ध कर लेता, यह सरावगी भाई चाहते नहीं, वे तो यही चाहते हैं कि इन्तज़ाम के लिये समय न दिया जाय और शास्त्रार्थ के समय खूब भीड़ भाड़ कर ऊधम मचा कर शास्त्रार्थ से सहज ही में पीछा छुड़ावें ।

अब जब के शास्त्रार्थ को टाल हुल्लड़ और असभ्योंकी नाई उदंगल करने से उनको सारा शहर धिक धिक कर रहा है तो शर्म उतारने के लिये अब फिर शास्त्रार्थ के लिये (उसी नाबालिग लड़के की आड़ में) विज्ञापन देते हैं परन्तु मालूम रहे कि हमारे सरावगी भाइयों की करतूत इस हद्द तक बढ़गई है कि कोई सभ्य समाज उनसे बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा और पुलिस के प्रबन्ध के अब बात चीत करना पसंद नहीं करेगा इसलिये यदि सरावगी भाइयों को अब भी शास्त्रार्थ करना मंजूर है तो अपने में से २ प्रतिष्ठित अजमेर निवासियों से बाबू मिट्ठन लाल जी वकील तथा बा० गौरीशंकरजी बैरिस्टर के नाम (जिनको आर्य्यसमाज ने अपनी ओरसे इस कार्य के लिये नियत कर दिया है) पत्र भिजावें । यह चारों महाशय मिलकर मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर सारा प्रबन्ध कर लेवें आर्य्यसमाज राजकीय निय-

मानुसार कार्य्य करेगा यदि ता० ६ को ही शास्त्रार्थ करना मंजूर होता तो कल कभी होगया था, यह सारी टालने की बात है।

ता० ८—७—१९१२

जयदेव शर्मा मंत्री आर्य्य समाज अजमेर।

——:०:——

मङ्गलवार ९ जुलाई १९१२ ईस्वी।

आर्यसमाजके कलके विज्ञापनानुसार हमारी ओरसे शास्त्रार्थके विषय में मैजिष्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करनेके अर्थ श्रीयुत सेठ ताराचन्दजी, लाला प्यारेलालजी जौहरी, सेठ चौथमलजी वैद्य तथा पन्नालाल जी भैंसा रईसान अजमेर नियत हुये जिनमेंसे नीचेके दोनों सज्जन आज कचहरीमें दस्तखत देनेके लिये दिनके तीन बजे पहुंच गयेथे परन्तु आर्यसमाजकी ओरसे नियुक्त प्रतिनिधि बाबू गौरीशङ्करजी बैरिष्टरने उस समय इस विषयमें बातचीत करनेसे बिलकुल इनकार करदिया और बाबू मिट्ठनलाल जी वकील बहुत ढूंढने पर भी कचहरीमें नहीं मिले। अतः हम लोग लौट आये और सर्व साधारणके ज्ञापनार्थ निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ॥

+ वन्दे जिनवरम् +

शास्त्रार्थसे ना हटैं, करो न टालमटोल।
छिपे रहोगे के दिना, मढ़े कागज़ी खोल॥

सर्व साधारण सज्जन महाशयोंकी सेवामें (जो कि दोनों ओरकी कार्रवाहियों और विज्ञापनोंको ध्यानपूर्वक देख रहें हैं) यह निवेदन करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि शास्त्रार्थको कौन तय्यार है और कौन उसमें केवल कागज़ी घोड़े ही दौड़ाकर टालमटोल कर रहा है क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं कि जब कि हम लोग आर्यसमाजकी सभी बातोंको मानते जाते हैं तब हम क्योंकर शास्त्रार्थसे हटरहे हैं॥

कल हमारी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके कार्यकर्तागण पुनः प्रातःकाल और सायङ्काल दोबार आर्यसमाज भवनमें शास्त्रार्थके शेष नियम तय करने के लिये गये पर शोक है कि आर्यसमाजके मन्त्रीजीने नियमादि तय करने या शास्त्रार्थके विषयमें किसी भी प्रकार की बात चीत करनेसे सर्वथा इन्कार करदिया॥

अब जो आर्यसमाज अपने " अब पछताये होत का जब खुलगई सारी पोल " शीर्षक विज्ञापनमें जैनियोंपर असभ्यता और गुल गपाड़ा करनेका दोषारोपण कर पूर्व निश्चित नियमके विरुद्ध मजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करने का अड़ंगा लगाकर शास्त्रार्थको टालना चाहता है सो ठीक नहीं। जैनियोंकी ओरसे अभीतक असभ्यताका कोई व्यवहार नहीं हुआ और इसकी साक्षी वे लोग भले प्रकारसे दे सकते हैं जो कि श्रीजैनकुमार सभाके प्रथम वार्षिकोत्सव पर स्वामी दर्शनानन्दजी और पं० यज्ञदत्तजी शास्त्रीके मौखिक शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे। परसों भी जैनलोग आर्यसमाजके अनेक असभ्य व्यवहारोंपर सर्वथा शान्त रहे और अन्तमें जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र कहकर समाज भवनसे चलेआये। जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र कहना असभ्यता नहीं वरन वह आर्य्यसमाजकी नमस्ते या सनातनधर्मियोंके जय रामजी और जय गोपालजी के समान परस्पर आदर सत्कारमें व्यवहार किया जाता है॥

निस्सन्देह असभ्यताका व्यवहार आर्य्यसमाजकी ओरसे ही हो रहा है जैसा कि सर्व साधारणको उनके असभ्य और अश्लील विज्ञापनोंसे भलीभांति प्रगट होगा। वे यह भी जानते होंगे कि आर्यसमाजियोंने हमारी ६ जुलाई की सभामें अपने नोटिस बांटते हुए कितनी गड़बड़ी डाली और परसों कभी फर्श उठाकर कभी मिट्टी डालकर और कभी किसीसे भिड़कर कैसा असभ्यता का व्यवहार किया और उसको हमारे जैन भाइयोंने कैसी शान्तितासे सहन किया॥

हमारी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा शास्त्रार्थके लिये सर्वदा उद्यत रहती है जैसा कि उसके स्वामी श्रीदर्शनानन्दजी और पण्डित यज्ञदत्तजी शास्त्रीके मौखिक शास्त्रार्थके समय बिना किसी विशेष नियमके तय किये हुए उनसे शास्त्रार्थ करने और अपने लिखित शास्त्रार्थके सर्व नियम आर्यसमाजहीपर तय करनेके लिये छोड़देनेसे स्वयं प्रगट है॥

यद्यपि हम लोग पूर्व निश्चित नियमके विरुद्ध किसी दूसरे अड़ंगेको मानने के लिये बाध्य न थे परन्तु इस भयसे कि कहीं ऐसा न हो कि आर्य्यसमाज इसी बहानेको लेकर शास्त्रार्थसे टलजाय हम लोगोंको आर्य्यसमाजके प्रस्तावनानुसार ही मजिस्ट्रेट साहब बहादुरकी आज्ञा लेकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार है॥

हमारी समाजने इस कार्यके लिये श्रीयुत सेठ ताराचन्दजी, लाला प्यारेलालजी, जौहरी, सेठ चौथमलजी बैद तथा सेठ पन्नालालजी भैंसा रईसान अजमेरको नियत किया है जिनमेंसे नीचेके दोनों सज्जन महोदय आज कचहरी में दरख्वास्त देनेके लिये दिनके ३ बजे पहुंच गये थे परन्तु आर्य्यसमाजकी ओरसे नियुक्त प्रतिनिधि श्रीयुत बाबू गौरीशङ्कर जी बैरिष्टरने उस समय इस विषयमें बात चीत करनेसे बिल्कुल इन्कार करदिया । अतः हम प्रगट करते हैं कि हमारे उपर्युक्त सज्जन यह कार्य करनेको उद्यत हैं । आर्य्यसमाजकी ओरसे नियुक्त सज्जनोंको उचित है कि अब इस कामको शीघ्र ही तय करडालें क्योंकि अब टालमटोलसे काम नहीं चलेगा ।

विश्वास रहे कि जबतक शास्त्रार्थ न होजाय या आर्यसमाज शास्त्रार्थसे इन्कार न करदे हम लोग उसको शास्त्रार्थसे छोड़ने वाले नहीं हैं ॥

घीसूलाल अजमेरा, मन्त्री श्री जैनकुमारसभा अजमेर,

तारीख ९ जुलाई सन् १९१२ ई० अजमेर,

आज आर्य्य समाज के प्रतिनिधि बाबू गौरीशङ्करजी बैरिष्टर और बाबू मिट्ठनलाल जी वकीलको शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में उचित कार्य्यवाही करनेके अर्थ निम्न पत्र भेजा गया ।

* वन्दे जिनवरम् *

मान्यवर महोदय जय श्री जिनेन्द्रजी

तारीख ८ जुलाईको प्रकाशित "अब पछताये होतका जब खुल गई सारी पोल" शीर्षक आर्यसमाजके विज्ञापन द्वारा यह ज्ञातकर अतीव प्रसन्नता हुई कि श्रीयुत बाबू गौरीशंकरजी बैरिष्टर (या बाबू मिट्ठनलालजी वकील) सहित आर्यसमाजकी ओरसे शास्त्रार्थके लिये मैजिष्ट्रेटसे आज्ञा लेनेको नियुक्त हुये हैं ।

अतः आपकी सेवामें निवेदन है कि हमारी समाजकी ओरसे श्रीयुत सेठ ताराचन्द जी, लाला प्यारेलालजी जौहरी, सेठ चौथमलजी बैद्य, और सेठ पन्नालाल जी भैंसा रईसान् अजमेर इसी कार्यके लिये नियुक्त हैं ।

सविनय प्रार्थना है कि आप इस पत्रके पाते ही यह प्रकाशित कर दें कि उपर्युक्त सज्जन महोदय इस कार्यके विषय में आपसे कब मिलें, या आप उनसे कब मिलनेकी कृपा करेंगे ।

यदि आप मिलना चाहें तो आज शामको ८ बजे से ९ बजे तक सेठ नेमीचंदजीके रंगमहलमें उपर्युक्त सज्जनोंसे मिलने का कष्ट स्वीकार करिये । यदि आप उनको बुलाना चाहें तो अपने मिलनेका समय लिखिये ।

कृपया इस विषयमें आपको अतीव शीघ्रता करनी चाहिये जिससे कि इन लोगोंका समय व्यर्थ नष्ट न जावे ।

भवदीय कृपाकांक्षी—घीसूलाल अजमेरा मन्त्री
श्री जैनकुमार सभा

ता० ९ । ७ । १२ अजमेर ।

हमारे विज्ञापनके उत्तरमें आर्य्यसमाजकी ओरसे आज रातको निम्न विज्ञापन प्राप्त हुआ ॥

ओ३म् ॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल ।
हीरा मुखसे ना कहै, लाख हमारा मोल ॥

पिछले ईतवारको आर्यसमाज भवनमें सरावगियोंके सिवाय बहुतसे दूसरे भाई भी मौजूद थे, वे इस बातकी साक्षी दे सकते हैं कि आर्य्यपुरुषोंने सरावगी भाइयोंको अपना महमान समझ उनके हजारों गाली गलौजकी परवाह न कर शान्तिको कायम रक्खा और उनकी हर प्रकारसे खातिर करते रहे, उसके बदलेमें झूठे लांछन लगाना, बैठनेके लिये फर्श बिछानेको धूलि उड़ाना और पंखे हिलानेको हाथापाई समझना इन्हींका काम है ॥

जिस शोर और गुलका अर्थ इन लोगोंने दुआ सलाम राम राम व नमस्ते आदि किया है उस पर पढ़े लिखे लोगोंको हंसी आये विना रह नहीं सकती, यदि हमारे सरावगी भाइयोंका उदंगल आर्य्यसमाज भवन तक ही रहता तो शायद उनकी यह बनावट चल भी जाती? परन्तु यह हा, हूका सिलसिला सारे शहरमें जारी रक्खा गया, जिससे बच्चा बच्चा उनकी सभ्यता से वाकिफ होगया और पुलिसको सर्वसाधारणकी शान्तिके भङ्ग होनेका अंदेशा पैदा हो गया । यही कारण था कि पुलिसने तहकीकात करना आवश्यक समझा और हमको भी मजिस्ट्रेटकी आज्ञा लेकर शास्त्रार्थ करनेका नियम रखना जरूरी मालूम हुआ आर्य्य उपदेशकोंका इनकी सभामें इनकी म

जीके मुआफिक शान्तिपूर्वक शास्त्रार्थ कर आना आर्य्यसमाजियोंकी धीरज और गम्भीरताको प्रकट करता है न कि सरावगी भाइयोंकी शान्तिको, जो अपनी सभाकी बदनामीका खयाल न करके तालियां पीटनेसे न चूके, तब आर्यसमाजमें आकर कब चुप रह सकते थे ॥

विज्ञापनोंमें कठोर शब्दोंका प्रयोग पहिले हमारे सरावगी भाइयोंने ही "मान की मरम्मत", 'आर्य्यसमाजकी ढोलकी पोल" "खादकी खाज" इत्यादि अनेक कटु वाक्योंसे शुरू किये, अब समाज पर ही इलजाम लगाना दूसरे की आंखमें तिनका देखना और अपनी आंखका शहतीर तक भी न देखने के समान है ॥

मेरे (मन्त्री) तथा बा० गौरीशंकरजी बैरिस्टरके बातचीत न करने की शिकायत सर्वथा अनुचित है, क्योंकि जब एक ओर तो बातचीतका बहाना किया जावे और दूसरी ओर उसके विरुद्ध नोटिस छपवा कर बांटे जावें तो फिर कौन समझदार आदमी ऐसी बातचीत पर विश्वास करेगा। यदि प्रतिष्ठित सरावगी भाई शास्त्रार्थ करानेको उद्यत हुए हैं तो वे प्रतिष्ठित मात्र ही कल ठीक ११ बजे (दिनके) श्रीमान् बाबू गौरीशङ्करजी बैरिस्टर एटलाके बंगले पर पधार जावें और श्रीमान् बा० मिट्ठनलाल जी व श्रीमान् बा० गौरीशंकरजीसे शास्त्रार्थ सम्बन्धी उचित कार्यवाही करलें।

रहे मिथ्या अभिमानके यह वचन कि "हम लोग उसको शास्त्रार्थसे छोड़ने वाले नहीं हैं" बड़ी हंसी दिलाने वाले हैं ॥

महाशय! यह लिखते वक्त शायद आपको ध्यान नहीं रहा कि आर्य्यसमाज तो सदैव आपकी सेवा करनेके लिये यहीं मौजूद है फिर इसके लिये ऐसा लिखना अपनी लड़कपनका परिचय देना है ॥

हमारे सरावगी भाइयोंको अपने नोटिसोंमें यह बतलाना था कि वे उन चारों बातोंसे हटे या नहीं, यदि वे ७ तारीखको ही ९ तारीखका शास्त्रार्थ मंजूर कर लेते तो उनका क्या बिगड़ जाता, मुख्य बातको छोड़ गर्भभरी भाषा उनकी ही कमजोरी दिखलाती है, । आर्यसमाज शास्त्रार्थसे पीछे हटना नहीं चाहता, परन्तु जो वह नहीं चाहता वह यह है कि उसे ऊधमधाड़ा पसन्द नहीं, शास्त्रार्थ शान्तिसे होता है जो बहुत भीड़ भाड़में कायम नहीं रह सकती। सब विचारशील पुरुष भी यही कहते हैं जैसा कि राय सेठ चांदमल

जी साहबके कथनसे स्पष्ट ही है ॥

ता० ९—७—१९१२

जयदेव शर्म्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर

—:०—

इस कारण कि उपर्युक्त विज्ञापन में आर्य्यसमाजने हमारी ओरके प्रतिनिधियों को लिखित शास्त्रार्थ के विषय में उचित कार्य्यवाही (मैजिष्ट्रेट से शास्त्रार्थके अर्थ आज्ञा प्राप्त) करनेके अर्थ अपने दो प्रतिनिधियोंमें एक बाबू गौरीशङ्कर जी वैरिष्टर एटलाके बङ्गले पर बुलाया था अतः हमारी ओर से इस विज्ञापनका कोई उत्तर प्रकाशित नहीं हुआ। पर इसमें कई भ्रामक बातें हैं जिनका उत्तर सर्व साधारण के हितार्थ प्रकाशित किया जाताहै।

अपने इस विज्ञापन में आर्य्यसमाजने जैनियों पर प्रथम ही यह मिथ्या दोष लगाया है कि उसने भवनमें आर्य्योंको हजारों गाली गलौज की और उनपर धूल उड़ाने, फर्श उठाने और हाथापाईं करने का मिथ्या दोष लगाया। पर जो पब्लिक वहां पर उपस्थित थी वह भली भांति जानती है कि जैनियों ने उस रोज आर्य्यों के असम्भव व्यवहारों और वैरिष्टर साहब के अनेक असभ्य कटु और सज्जनों के मुंहसे न निकलनेवाले वचनोंको कैसी शान्ति और धैर्य्य से सहा। यद्यपि वह लोग उसका मुंह तोड़ उत्तर दे सकते थे पर इस भयसे कि आर्य्य समाज हमारे वैसा करने का बहाना लेकर कहीं शास्त्रार्थ से बदल जाय वह लोग बहुत ही शान्त रहे। निस्सन्देह कुंवर दिग्विजयसिंहजी चन्द्रसेन जैन वैद्य और फूलचन्द्र पांड्या अपने आर्य्यसमाजी भाइयोंकी समस्त भ्रामक और असत्य बातोंका बड़ी शान्ति और सभ्यतासे सभा में ही बैठे बैठे या खड़े होकर (जिस प्रकार वह बातें कही जाती थीं) प्रतिवाद किये बिना नहीं रहते थे और यदि उन लोगों के ऐसा करनेको ही आर्य्य समाज गाली गलौज करना समझता हो तो बात ही दूसरी है ॥ जिस कमरे में हम लोग बैठे थे वहां पर फर्श पहिले से ही बिछे हुये थे इस लिये यह लिखना समाजका नितान्त मिथ्या है कि फर्श हम लोगों के बैठने को बिछाये जाते थे। समाज को ऐसा लिखना योग्य था कि हम लोगों के नीचे बिछे हुये फर्श स्वामी दर्शनानन्दजीका व्याख्यान पूर्व निश्चितानुसार होनेके अर्थ हम लोगों के नीचे से उठाकर चौकमें बिछाये जाते थे। आर्य्यसमाजने उस रोज जैनियोंका जैसा आतिथ्य सत्कार किया वह जैनियों और अन्य उपस्थित लोगोंको बहुत दिनों तक न भूलेगा। शेम!

महात्मन! शोर गुलका अर्थ दुआ सलाम नहीं किया गया वरन आपके ८ जुलाई को प्रकाशित 'जय' जिनेन्द्र, 'जय जिनेन्द्र, शब्दका जो कि ठीक ही है। देखिये आपके शब्द ये हैं "परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने एक न मानी और जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र आदि शब्दोंसे शोर गुल मचाते हुये समाज भवनसे चले गये। रहा शोर गुल मचानेकी बात सो जब कि प्रत्येक जैन भाई ने (आपके उनको अपने भवन से खदेड़ देने पर भी) आपसे प्रेम पूर्वक जय जिनेन्द्र, "जय जिनेन्द्र किया और वैसा करनेसे कुछ शोर गुल हो गया हो तो आश्चर्य्य नहीं। रही शहर में जय जय कारकी ध्वनि सो वह हाहूका सिलसिला और असभ्यता नहीं वरन विजय प्राप्त होने पर हृदयोल्लास का नमूना है। पुलिस को शान्ति भङ्गका अन्देशा होना आर्य्यसमाज की कृपाका ही फल था और इसी कारण वह तहकीकात करनेको मौकेपर आर्य्यसमाज भवनमें गयी होगी यदि दुर्जनतोष न्यायसे थोड़ी देरके अर्थ समाज का यह लिखा मानलिया जाय कि जैनियोंके शहरमें हाहू करनेके कारण शान्ति भङ्ग होजाने के भयसे उसको मैजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर शास्त्रार्थ करनेका नियम रखना जरूरी मालूम हुआ तो इस से यह तो प्रत्यक्ष ही है कि जब तक जैनियों ने (आर्य्यसमाज के लेखानुसार) शहर में हाहू नहीं की थी तब तक उस को ऐसी (मैजिष्ट्रेट से आज्ञा लेने की) आवश्यकता कदापि न थी यदि ऐसा ही था तो वह बीचमें एक दिनकी मोहलत क्यों लेना चाहता था? लाख छिपाने पर भी उसको अपने ८ तारीख के "अब पछताये होत का जब खुल गई सारी पोल" विज्ञापन में इसका कारण यह लिखना ही पड़ा कि "असली बात यह है कि आर्य्य समाज एक दिन बीच में इसलिये लेता था कि मैजिष्ट्रेट से आज्ञा लेकर भीड़भाड़ का ऊधम रोकने के लिये पुलिस का पूरा पूरा प्रबन्ध कर लेता" असल बात यह है कि आर्य्यसमाज एक दिन बीच में लेकर मैजिष्ट्रेटको शान्ति भङ्ग होने का भय दिखा उसकी आज्ञा से शास्त्रार्थ बन्द करना चाहता था और हम लोग उसकी इस बातको जान गये थे इसी से हम उसको एक दिन की मोहलत देना पसंद न करते थे। जो हो। सत्यबात छिपाये नहीं छिपती सर्व साधारण को उसके लेखोंसे ही यह भली भांति ज्ञान हो गया कि वह क्यों हम लोगोंपर असभ्यता और शान्ति भङ्ग करनेका मिथ्या दोष लगाकर शास्त्रार्थसे टलने के अर्थ मैजिष्ट्रेट से आज्ञा प्राप्त करने का अड़ङ्गा लगा रहा था॥

निःसन्देह ३० जून के शास्त्रार्थ की सभामें आर्य्यसमाजियोंकी ओर से (सिवाय कुछ आर्य्यसमाजियों के ताली पीटने में अग्रेसर होनेके कामको छोड़कर और कोई) असभ्यता का व्यवहार नहीं हुआ पर ६ जुलाई के शास्त्रार्थकी सभाका दृश्य देखने ही योग्य था कि हमारे अनेक आर्य्यसमाजी भाई किस प्रकार क्रोधमें भरे हुये अपने नोटिस बांटकर लोगोंसे दंगा करते हुये सभाके कार्य्यमें गड़बड़ी डाल रहे थे और ७ जुलाईको उन्होंने आर्य्यसमाज भवनमें अपनी असभ्यता और उद्दण्डताकी पराकाष्ठा दिखला डाली जब कि दोनों मौखिक शास्त्रार्थों में हमने कुल नियम आर्य्य उपदेशकोंकी इच्छानुसार ही रक्खे थे तब उनके शान्ति भङ्ग करनेका कारण ही क्या हो सकता था।

हमारी ३० जूनकी सभामें तालियां वहां पर उपस्थित कुछ मूर्ख लोगोंने (जिनमें कि हमारे कई आर्य्यसमाजी भाई अग्रेसर थे) पीटी थीं और उसमें हमारे अनेक अनभिज्ञ जैन भाई भी सम्मिलित हो गये थे जिसके कि अर्थ हमको बड़ा दुःख है और उनकी ओरसे हम क्षमा प्रार्थी हैं। पर समाजने देखा ही होगा कि हम लोगोंने पूर्व ही तालियां पीटने और जय जयकार बोलनेसे सबको बिलकुल रोक दिया था और पीटने वालोंको खूब धिक्कार कर उनके इस कृत्यपर शोक प्रकट किया था॥

जिन लोगोंने दोनों ओरके विज्ञापनोंको भली भांति ध्यान से पढ़ा है वह इस बातकी साक्षी दे सक्ते हैं कि हम लोगोंकी ओरसे प्रकाशित विज्ञापनों में कोई असभ्य और अश्लील शब्द नहीं। आर्य्य समाजने बहुत ढूंढ खोजकर जो तीन „नामकी मरम्मत" । "आर्य्य समाज की ढोल की पोल" और "बादकी खाल„ शब्द प्रकाशित किये हैं वे अश्लील और असभ्य नहीं वरन यथार्थ वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले साधारण शब्द हैं। अश्लीलता, असभ्यता, और व्यक्तिगत आक्षेपों का प्रवाह यदि देखना हो तो उनके „अब हठ धर्म्मी से काम नहीं चलेगा", शीर्षक विज्ञापनों से इधरके विज्ञापन ध्यान पूर्वक पढ़ें।

जब कि ८ तारीखके प्रातःकाल आर्य्यसमाजके मन्त्रीकी सेवामें उपस्थित होने वाले श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके कार्य्यकर्ताओंसे उन्होंने सन्ध्याको बात चीत करने की प्रतिज्ञा की थी और बाबू गौरीशङ्कर जी वैरिष्टर आर्य्यसमाजकी ओर से नियम करने के अर्थ प्रति निधि नियत हुये

थे ऐसी दशामें उन लोगों का कड़ाई के साथ बात चीत करने से इन्कारकर देना निस्सन्देह आक्षेपणीय है । मालूम नहीं कि कौन से बात चीत के विरुद्ध नोटिस प्रकाशित हुये ।

नहीं जानते कि हमारे "हम लोग उसको शास्त्रार्थ से छोड़ने वाले नहीं हैं,, वचन कैसे मिथ्या अभिमान के होकर हंसी दिलाने वाले हैं और श्रीजैन कुमार सभा ने वैसा लिखकर कैसे अपने लड़कपन का परिचय दिया है ।

आर्य्यसमाजकी चारों बातें स्वीकार न करनेका कारण आर्य्य समाजी भाइयोंको युक्ति और प्रमाणों से आर्य्य समाज भवन में कईवार बतलाया जा चुका था जैसा कि पूर्व ही प्रकाशित हुआ है । तारीख ७ को ही ९ तारीख को शास्त्रार्थ मंजूर न करने का कारण यह था कि हम लोगों को विश्वसनीय रीति से इस बातका पता लग गया था कि आर्य्यसमाज एक दिन बीचमें लेकर मैजिस्ट्रेट को शान्ति भङ्ग होने का भय दिखा उसकी आज्ञा से शास्त्रार्थ बन्द कराना चाहता था और हम लोगों को यह बात कदापि इष्ट न थी—हम लोग चाहते थे कि शास्त्रार्थ हो ही जाय । इसी कारण उसकी और सब बातें मंजूर कर लेने पर भी हम लोग ८ तारीख को ही शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने की बात पर डटे रहे । पर अब यह देखा कि आर्य्य समाज इस बहाने को ही लेकर शास्त्रार्थ से हटा जाता है और उसका दोष हमारे मत्थे पटकता है तब हमको उसकी ९ तारीख की बात भी स्वीकार करना पड़ी ॥

हम जानते हैं कि शास्त्रार्थ शान्ति से ही होता है और वह शान्ति बहुत भीड़ होने पर भी क़ायम रह सकी है जैसा कि तारीख ३० जून और ६ जुलाईके मौखिक शास्त्रार्थोंके समय श्रीजैनकुमार सभाने अपने उत्तम प्रबन्ध द्वारा सबको करके दिखा दिया । फिर पब्लिक शास्त्रार्थ नाम रख न मालूम आर्यसमाज क्यों चुपचाप कुल्हियामें ही गुड़ फोड़ना चाहकर पब्लिकको आनेसे रोकता था ॥

पाठको ! यदि आर्यसमाज निज धर्मरक्षार्थ इस प्रकार मिथ्या बातोंको प्रकाशित कर सर्वसाधारणको धोखेमें डालता हो तो आपको आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि उसके न्यायदर्शन के चतुर्थ अध्यायका पचासवां (अन्तिम) सूत्र यह है कि "तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोह संरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत्" अर्थात् जैसे बीजाङ्कुरकी रक्षाके लिये कण्टक शाखाओंका आवरण किया जाता है वैसे ही तत्त्व निर्णयकी रक्षाके लिये

जल्प और वितण्डा हैं। इस सूत्र पर उसके प्रसिद्ध विद्वान् सामवेद भाष्यकार पण्डित तुलसीराम जी स्वामी महाराज लिखते हैं कि जिज्ञासुको मत्सरता और हठसे कभी इनका आश्रय न लेना चाहिये, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर तत्त्वकी रक्षाके लिये (जैसे खेतकी रक्षाके लिये कांटोंकी बाड़ लगा देते हैं) इनका प्रयोग करना चाहिये ॥

बुधवार १० जुलाई १८९२ ईस्वी।

आर्यसमाजके तारीख ९ को प्रकाशित विज्ञापनके अनुसार हमारी ओर के चारो नियुक्त प्रतिनिधि सेठ ताराचन्दजी व लाला प्यारेलाल जी जौहरी रईसान नसीराबाद तथा सेठ चौथमलजी वैद्य व सेठ पन्नालालजी रईसान अजमेर आज दिनके साढ़े दस बजे ही आर्यसमाजके प्रतिनिधि बाबूगौरीशंकरजी बेरिष्टर एटलाके बगले पर आर्यसमाजके दूसरे प्रतिनिधि बाबू मिट्ठनलाल जी वकील सहित मैजिष्ट्रेटसे लिखित शास्त्रार्थके विषयमें आज्ञा लेनेको दरख्वास्त देनेको पहुंच गये। बातचीत शुद्ध होने पर न मालूम क्यों आर्यसमाजके प्रतिनिधियोंने मैजिष्ट्रेटसे आज्ञा लेनेसे इन्कार करदिया और यह कहा कि अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि अजमेरमें अब शास्त्रार्थ करना ही हम नहीं चाहते। हमारे प्रतिनिधियोंने अजमेरमें ही लिखित शास्त्रार्थ करनेके अर्थ बहुत कुछ कहा सुना पर आर्यसमाजके प्रतिनिधियोंने टससे मस न की। जब हमारे प्रतिनिधियोंने देखा कि इतनी मेहनत और इतने दिन इन्तिजारीमें खर्च करने परभी हम लोगोंका अभिलषित शास्त्रार्थ नहीं होता तो 'भागे भूतकी लंगोटी ही सही' इस न्यायके अनुसार उन को एक ऐसे लिखित शास्त्रार्थके अर्थ को कि इटावह और अजमेरमें बैठे बैठे हो सके बड़ी कठिनतासे तैय्यार किया और उसके निम्न नियम तय हुये ॥

१ यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज अजमेर और श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावहके मध्यमें होगा ॥

२ विषय "ईश्वर सृष्टिका कर्ता है कि नहीं" जिसमें आर्यसमाजका यह पक्ष है कि सृष्टिका कर्ता ईश्वर है और जैनमहाशयोंका पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टिका कर्ता नहीं ॥

३ शास्त्रार्थ नागरीभाषामें होगा ॥

४ हर एक पक्षकी ओरसे एक २ प्रश्नपत्र जिस पर मन्त्रीके हस्ताक्षर होंगे

दूसरे पक्षके मन्त्रीके पास भेजा जावेगा और उत्तर भी मन्त्री ही के हस्ताक्षरी भेजे जावेंगे। आर्यसमाजकी ओरसे पं० जयदेवजी शर्मा मन्त्री होंगे और श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाकी ओरसे लाला चन्द्रसेनजी वैद्य मन्त्री होंगे॥

५ प्रश्नपत्रमें एक ही प्रश्न होगा॥

६ प्रश्नोत्तर होके मन्त्रीके पास १० दिन तक पहुंच जाने चाहिये और वे रजिष्टरी द्वारा भेजे जावें॥

७ प्रथम प्रश्न पत्र आपसमें ता० ११ जुलाई १९१२ को शामके ५ बजे तक एक दूसरेके पास पहुंच जाने चाहिये॥

८ प्रश्नोत्तरोंको छपानेका प्रबन्ध हरएक मन्त्री अपने आप करें॥

कहीं ऐसा न समझा जाय कि जैनियोंने ही अजमेरमें लिखित शास्त्रार्थ करनेसे इन्कार कर दिया इस कारण इस शास्त्रार्थकी सूचनाका विज्ञापन आर्य्यसमाजके मन्त्रीकी ओरसे निकलना निश्चित हुआ।

गुरुवार ११ जुलाई १९१२ ईस्वी।

आज प्रातःकाल १० बजे कलके निश्चयके अनुसार आर्य्यसमाजकी ओर से निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ।

विज्ञापन।

सर्व साधारणको विदित हो कि जैसा कि विज्ञापन ता० ९ जुलाई १९१२ को आर्य्यसमाज अजमेरकी तरफसे प्रकाशित हुआ था उसके अनुसार सेठ ताराचन्दजी व लाला प्यारेलालजी रईसान नसीराबाद तथा सेठ चौथमल जी वैद्य व सेठ पन्नालालजी भैंसा रईसान अजमेर व बाबू गौरीशङ्कर जी बैरिष्टर एटला और पं० मिट्ठनलाल जी भार्गव वकील आज १० जुलाई सन् १९१२ ई० को दिनके ११ बजे बाबू गौरीशङ्कर जी बैरिष्टरके मकानपर एकत्रित हुए और सर्व सम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध केवल पत्र द्वारा निम्नलिखित नियमानुसार हो:—

१—यह शास्त्रार्थ आर्य्यसमाज अजमेर और श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावाके मध्यमें होवे।

२—विषय "ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता है कि नहीं" जिसमें आर्य्यसमाजका यह पक्ष है कि सृष्टिका कर्त्ता ईश्वर है और जैन महाशयोंका पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता नहीं है।

३-शास्त्रार्थ नागरी भाषामें होगा ।

४-हरएक पक्षकी ओरसे एक २ प्रश्नपत्र जिसपर मन्त्रीके हस्ताक्षर होंगे, दूसरे पक्षके मन्त्रीके पास भेजा जावेगा और उत्तर भी मन्त्रीहीके हस्ताक्षरों भेजे जावेंगे। आर्यसमाजकी ओरसे पं० जयदेव शर्मा मन्त्री होंगे और श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाकी ओरसे लाला चन्द्रसेन जी वैद्य मन्त्री होंगे।

५-प्रश्नपत्रमें एक ही प्रश्न होगा,

६-प्रश्नोत्तर होके मंत्रीके पास १० दिन तक पहुंच जाने चाहियें और वे रजिस्टरी द्वारा भेजे जावें ।

७-प्रथम प्रश्नपत्र आपसमें ता० ११ जुलाई १९१२ की शामके ५ बजे तक एक दूसरेके पास पहुंच जाने चाहिये ।

८-प्रश्नोत्तरोंको पत्रोंमें छपवानेका प्रबन्ध हरएक मन्त्री अपना अपने आप करें ।

यह भी निश्चय हुआ कि दोनों पक्षसे अब इस शास्त्रार्थके विषयमें कोई विज्ञापन न छापे जावें और ऊपर लिखित नियमोंपर शान्तिपूर्वक शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिया जावे ।

१ द: प्यारेलाल
२ द: ताराचन्द
३ द: चौथमल
४ द: पन्नालाल
५ गौरीशंकर
६ Mitthan lall

प्रकाशक जयदेव शर्मा मंत्री

ता० १०—७—१९१२

—:०:—

इस विज्ञापन को पाते ही हम लोगों की ओर से नियमानुसार एक प्रश्न ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वके विषयमें आर्य्यसमाजको भेज दिया गया और दो बजे दिनके लग भग आर्य्यसमाजका प्रश्न भी हम लोगोंको प्राप्त हो गया और इस प्रकार यह शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया ।

(नोट) यह शास्त्रार्थ अभी बराबर चल रहा है और समाचार पत्रोंमें छपवाया जायगा और पुस्तकाकार भी प्रकाशित होगा ।

आज प्रातःकाल और मध्यान्हमें दो वार पंडित दुर्गादत्त जी शास्त्री

हम लोगोंके पास पुनः आये और आर्य्यसमाज तथा स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वतीके विलाप तथा हृदय द्रावक बातों और आग्रहोंका (जिनके कि कारण उनका चित्त उस दिवस उनके अत्यन्त प्रिय बन्धु आर्य्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् पंडित गणपति जी शर्म्मा के अकाल मृत्यु का समाचार सुनने से परम शोकाकुल होनेसे पिघल गया था और बहुत दवाव पड़ने पर उन्हें "जैन धर्म परित्याग" शीर्षक विज्ञापन निकालना ही पड़ा था) वर्णन करते हुये अपनी भूलपर बड़ा पश्चाताप प्रगट किया और कहा कि मुझे आर्य्यसमाजपर बिलकुल श्रद्धा नहीं है और मैं एक मात्र जैनधर्मको ही आत्मा का कल्याण करने वाला समझ कर उसको पुनः ग्रहण करता हूं। ऐसा कहकर उन्होंने हम लोगों को व्यर्थ ही बहुत मजबूरी से ऊपरे मन बदनाम करनेके अर्थ बहुत क्षमा प्रार्थना चाही और निम्न विज्ञापन अपने हाथसे लिखकर प्रकाशित करनेको दिया।

वन्देजिनवरम्।

विज्ञापन।

मैं अत्यन्त खेदके साथ प्रकाशित करता हूं कि स्वामी दर्शनानन्द जी और पंडित गोपालदासजीके मौखिक शास्त्रार्थके दूसरे दिन आर्यसमाजी भाइयोंने कई प्रकारकी लाचारियां डालकर मुझसे (जैन धर्म परित्याग) शीर्षक विज्ञापन निकलवा दिया। परन्तु सोचनेसे मालूम हुआ कि किसीके दबावमें पड़कर सत्यधर्मका परित्याग करनेसे आत्माका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। इस लिये मैं सर्वसाधारणसे निवेदन करता हूं कि मुझे अपने पूर्व प्रकाशित विज्ञापनका बड़ा पश्चाताप है और अब मैं अपने पूर्व गृहीत और भूलसे त्यक्त सत्य जैनधर्मको पुनः ग्रहण करता हूं।

निवेदक दुर्गादत्त शर्मा अजमेर

११।७।१२

आज रात्रिको जैनसभा अजमेरकी ओरसे सभा का एक विशेष अधिवेशन करना निश्चित हुआ तदनुसार निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया।

÷ वन्दे जिनवरम् +

आवश्यक सूचना।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंको विदित हो कि आज ता० ११ जौलाई

सन् १९१२ ई० को स्थान गोदोंकी नशियोंमें समय रात्रिके ८ बजेसे सभा होगी। उसमें स्याद्वाद वारिधि वादिगज केसरी पं० गोपालदासजी बरैया न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्रजी कुंवर दिग्विजयसिंहजी पं० पुन्नूलालजी आदिके जैनधर्मपर उत्तमोत्तम व्याख्यान और भजन होंगे। अतः आप सर्वसज्जन अवश्यमेव पधार कर धर्मलाभ उठाइये। विज्ञेष्वलम्।

प्रार्थी:—फूलचन्द पांड्या, मन्त्री जैनसभा अजमेर।

गोदोंकी नशियांमें ठीक समयपर सभाका प्रारम्भ हुआ। भजन होनेके पश्चाद् श्रीमान् स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी पण्डित गोपालदासजी बरैयाने मंगलाचरण करते हुये ईश्वरके स्वरूपके विषयमें एक छोटीसी सारगर्भित वक्तृता देकर सभापतिका आसन ग्रहण किया। इटावह निवासी श्रीमान् पण्डित पुन्नूलालजीने जीवके सच्चे सुखका निर्णय करते हुये उसके प्राप्तिका उपाय अभिधेय, सम्बन्ध, शक्यानुष्ठान इष्ट प्रयोजन और पूर्वापर विरोध रहित लक्षण वाले शास्त्रसे प्राप्त होना बतलाकर इन लक्षणोंकी अव्याप्ति वेदादि शास्त्रोंमें बतलाते हुये जैनशास्त्रोंको ही कल्याणकारी सिद्ध किया। न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्दजीने जैनधर्मके पेटेमें ही अपेक्षाओंसे सब धर्मोंका आजाना सिद्ध किया। कुंवर दिग्विजयसिंहजीने सर्वजीवोंके हितार्थ प्रत्येक जनभाईको निज ज्ञान और चरित्रकी वृद्धि करके जैनधर्मका प्रकाश और उसकी सच्ची प्रभावना कर स्वपर कल्याण करनेका उपदेश दिया। फूलचन्द पाण्ड्याने श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाकी बड़ी प्रशंसा कर उसको अनेकशः धन्यवाद दिया और अन्तमें मुन्नालिकवादी आदिके कई भजन होकर जय जयकार ध्वनिसे बड़े आनन्द और उत्साहके साथ सभा समाप्त हुयी॥

शुक्रवार १२ जुलाई १९१२ ईस्वी।

चौदह दिवश के पश्चाद् आज सन्ध्याको पांच बजेकी एक्स प्रेस ट्रेनसे श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा अजमेरसे बड़े धूमधाम और उत्साहके साथ विदा हुयी। स्टेशनपर जैन भाइयोंका प्रेम और सत्कार देखने ही योग्य था।

अजमेरमें बारह तेरह दिवशों तक जैन धर्मके विषयमें भजन, व्याख्यान, शङ्का समाधान और शास्त्रार्थोंकी खूब धूम रही जिनके कारण सर्व साधारणका उसके विषयमें मिथ्या ज्ञानका बहुत कुछ नाश होकर यथार्थ स्वरूपका बोध हुआ।

दो मौखिक और तीसरे लिखित शास्त्रार्थके कारण अजमेर, अजमेरा और उसकी श्री जैनकुमार सभा चिरकाल तक लोगोंको स्मर्ण रहेगी और उन्हें लोग आदरकी दृष्टिसे देखकर अनुकरण करने योग्य समझते रहेंगे।

अन्तमें हमारी यह परम मङ्गल कामना है कि श्री जैनकुमार सभा अजमेरके उत्साही, साक्षर और नव युवक सभासद दिन दूने रात चौगुने विद्वान, बुद्धिवान और चारित्रवान होकर जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना करनेमें कटिबद्ध रहें और उनके अनुकरण करनेकी सामर्थ्य सर्व जैनकुमारोंमें हो जिससे कि वह जैन धर्मका डङ्का सारे संसारमें बड़े जोर शोरसे बजाकर सब जीवोंको सच्चे कल्याणकी प्राप्ति करा सकनेमें सर्वथा समर्थ हों।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री
श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा—इटावा।

———:o:———

परिशिष्ट नम्बर "क"॥

मौखिक शास्त्रार्थ

जो श्रीमान् स्याद्वाद वारिधि वादिगजकेसरी पण्डित गोपालदास जी वरैय्या द्वारा श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा और आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् और प्रचारक संन्यासी स्वामी श्रीदर्शनानन्द जी सरस्वती के मध्य "ईश्वर इस सृष्टिका कर्त्ता है या नहीं?" इस विषय पर रविवार ३० जून १९१२ ईस्वी को मध्यान्ह के २ से ५ बजे तक स्थान गोदों की नशियां अजमेर में कई हजार लोगोंके समक्ष सेठ ताराचन्द जी रईस नसीराबादके सभापतित्त्व में हुआ॥

वादिगजकेसरीजी—प्यारे भाइयो! बड़े हर्ष का समय है कि आज एक विषयका निर्णय होता है। विषय यह है कि ईश्वर इस सृष्टिका कर्त्ता है या नहीं। सब ही पदार्थोंका निर्णय उद्देश्य लक्षण और परीक्षासे होता है। अतः इस विषयमें प्रश्न यह है कि इस सृष्टिके बनानेमें ईश्वरका कर्तृत्व क्या? जब कि कहा जाता है कि परमात्माने भिन्न भिन्न परमाणुओं को जो कि प्रलयकालमें भिन्न भिन्न स्थानोंमें बेकार अवस्थामें पड़ेहुए थे मिलाकर सूर्य चन्द्रादि रूप बनाया तब यह निश्चय है कि परमात्माने उनको क्रियामें परिणत कि-

या। जो दूसरे को क्रिया देता है उसमें स्वयं क्रिया होनी चाहिये क्योंकि क्रियाका लक्षण "देशात् देशान्तर प्राप्ति" अर्थात् एक देशसे दूसरे देश में प्राप्त होना है और यह परमात्मामें उसके एकरस सर्वव्यापी होनेसे असम्भव है। यदि थोड़ी देरको आपके ईश्वरमें क्रिया मान भी लीजाय तो यह बतलाइये कि क्रिया के स्वाभाविक, वैभाविक, आज्ञा, इच्छा, दया, न्याय और क्रीड़ा आदि अनेक भेदोंमें से वह कौनसा कर्त्ता है। यदि ईश्वरमें क्रिया स्वाभाविक मानें तो आपके मानेहुए वह सृष्टि और प्रलय दोनोंका कर्त्ता परस्पर दोनों के विरोधी गुण होनेसे हो नहीं सकता। यदि उसमें वैभाविक रीतिसे कर्तृत्व मानो तो उस में अशुद्धता पायी जायगी। यदि ऐसा मानो कि उसने आज्ञा दी और परमाणु सूर्य चन्द्रादि रूप बनगये तो ईश्वरके शब्द और परमाणुओं के श्रवण शक्ति होनेका प्रसङ्ग आया जो कि ईश्वरके अशरीर और परमाणुओं के जड़ होनेसे असम्भव है। यदि यह मानो कि ईश्वरके सृष्टि बन जाने की इच्छा हुई और परमाणु उस रूप बनगये तो ईश्वरमें विभाव और परमाणुओं में ईश्वरकी इच्छा जान लेने (चेतनत्व) का प्रसङ्ग आनेसे हो नहीं सकता। यदि यह मानो कि ईश्वरमें दयासे क्रिया है तो उस क्रियाका फल भी समस्त जीवोंको सुखदायी होना चाहिये। यदि यह कहो कि ईश्वरमें न्यायकी क्रिया है तो रोकनेकी शक्ति होने पर भी उसने जीवोंको ऐसे कर्म क्यों करने दिये जिससे कि उसको न्याय करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई। यदि ईश्वरमें क्रीड़ासे कर्तृत्व है तो उसमें अज्ञानता आदि दोषोंका प्रसङ्ग आवेगा। इत्यादि किसी भी क्रियाके भेदसे वह सृष्टि कर्त्ता नहीं हो सकता। जब कि परमात्मा अखण्ड एकरस और सर्वव्यापी माना जाता है तो उसमें एकसी क्रिया होने के कारण कोई परमाणु अपने स्थानसे हिल नहीं सकता। यदि यह कहो कि परमात्माने एक एक बिखरे हुए परमाणुको उठा उठाकर जोड़ा तो ईश्वरके हस्त पादादि अवयव होनेका प्रसङ्ग हुआ जो कि उसके निराकार होनेसे है नहीं। अतः बतलाइये कि सृष्टिके बनानेमें ईश्वरका कर्तृत्व कैसे और क्या है।

स्वामीजी,-क्रियावान् ही क्रिया दे यह नियम नहीं। चुम्बक पत्थर स्वयं नहीं हिलता, परन्तु लोहेको हिला देता है। इससे सिद्ध है कि क्रियासे क्रिया उत्पन्न नहीं होती, किन्तु शक्तिसे क्रिया उत्पन्न होती है। इच्छा अप्राप्त इष्टकी हुआ करती है, कोई पदार्थ परमेश्वरको अप्राप्त नहीं, इस कारण परमात्मामें इच्छा करना नहीं घटता। क्रिया दो प्रकारकी होती है, एक

इच्छापूर्वक और दूसरी नियमपूर्वक । इच्छापूर्वक क्रिया जीव की होती है और नियमपूर्वक परमात्माकी, ईश्वरमें क्रिया स्वाभाविक है "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" । सृष्टिमें हरएक क्रिया नियमपूर्वक हो रही है सूर्य चन्द्र आदि सबमें नियमपूर्वक क्रिया है । वृक्षादिके एक २ पत्तमें नियमपूर्वक क्रिया है । औ अपने नियामकका लक्ष्य कराती है । सृष्टि और जगत् दोनों शब्द भी अपने बनाने वालेका लक्ष्य कराते हैं सृष्टि वह जो बनाई गई हो और जगत् वह जो चले । न कोई पदार्थ अपने आप बन सकता है न चल सकता है । परमाणुओंमें गति है नहीं, इसलिये बनाने और चलाने वाला कोई अवश्य होना चाहिये । यदि परमाणुओंमें स्वाभाविक गति होती तो उनका संयोग नहीं हो सकता था, क्योंकि स्वाभाविक गतिका भेद सदा बना रहता । जो परमाणु जिससे जितनी दूर पर जा रहा था उतनी ही दूर पर चला जाता । परमाणुओंमें आकार भी नहीं, हरएक कार्यमें ३ चीजें होती हैं, एक आकृति, दूसरी व्यक्ति, तीसरी जाति । मिट्टीमें ईंटकी शक्ल नहीं न ईंटमें मकानकी, तब कहांसे आई । हरएक कहेगा ईंटकी शक्ल कुम्हारके और मकानकी शक्ल इञ्जीनियरके ज्ञानसे, सिद्ध हुआ कि आकृति कर्त्ताके ज्ञानसे आती है । नेस्ति से हस्ति नहीं होती, उपादानसे व्यक्ति आती है । जाति नित्य है जगत् आकार-वाला है, जन्य है, साकार जन्य होता है । यथा घट साकार है, जन्य है, परमाणु आकार वाले नहीं तब परमाणुओंमें आकृति कहांसे आयी । परमात्माने आज्ञा दी और परमाणुओंने सुना यह आर्य्यसमाजका दावा (सिद्धान्त) नहीं, परमात्मा एक एक पदार्थको लेकर जोड़ता है यह ठीक नहीं । यह दोष एकदेशी और परिच्छिन्न पदार्थमें होता है । परमात्मा सर्व व्यापक है जगत् उसके अन्दर है । अन्दरूनी पदार्थमें गति देनेके लिये हाथ पैर आदि इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं । इसी लिये कहा गया है कि "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" । शरीरके घावोंको भरनेके लिये जो खून आता है उसे कौनसा हाथ खींचकर लाता है ॥

वादिगजकेसरी जी—यह मानना ठीक नहीं कि चुम्बकमें क्रिया नहीं होती क्योंकि उसमें परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम दोनों मौजूद हैं जिस समय चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है उस समय उसके परमाणुओंमें परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम या

अपरिस्पन्दात्मक परिणाम बराबर होता है * । क्रियाका लक्षण देशात् देशान्तर प्राप्ति है जो कि आपके ईश्वरमें एक रस सर्व व्यापी होनेके कारण असम्भव है । यदि ईश्वरमें चुम्बकके आकर्षणकी भांति क्रिया स्वाभाविक है तो जिस प्रकार चुम्बक सदैव लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है उसी प्रकार परमाणुओंको भी सदैवसे होनेके कारण ईश्वर उसमें अपने स्वभावसे सदैव क्रिया देता रहता होगा और उसका फल सृष्टि सदैवसे होगी । जब ऐसा है तब प्रलय कैसे होती है क्योंकि वेदान्तके "नैकस्मिन्नसम्भवात्" सूत्रके अनुसार ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्वके दो विरोधी गुण नहीं रह सकते । सृष्टिके सब कार्य्य नियम पूर्वक नहीं होते क्योंकि "गधः सुवर्णं फलमिक्षुदण्डे नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु । विद्वान् धनाढ्यो न तु दीर्घजीवी धातुः पुरा कोपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥" कहीं वर्षा कितने ही दिन होती है कहीं कितने ही दिन और जब उसकी आवश्यकता होती है तब वह कभी नहीं होती और कभी कभी विना आवश्यकता ही इत्यादि अनेक अ-

* साइन्सके सुप्रसिद्ध विद्वान् भूत पूर्व मिष्टर जे० क्लर्क मेक्सवेल एम० ए० एल एल० डी०, एफ० आर० एस एस०, एल० एण्ड ई० आनरेरी फेलो आव ट्रिनिटी कालेज और प्रोफेसर आव एक्सपेरीमेण्टल फ़िज़िक्स इन दी यूनिवर्सिटी आव केम्ब्रिज अपनी मैनुअल्स आव एलीमेन्टरी साइन्स सीरीज़ "मैटर एण्ड मोशन" नामक पुस्तकमें न्यूटनकी थर्ड ला आव मोशन (क्रियाके तीसरे नियम) की सिद्धिमें पृष्ठ ४८ लिखते हैं कि:—

The fact that a magnet draws iron towards it was noticed by the ancients, but no attention was paid to the force with which the iron attracts the magnet अर्थात् यह विषय कि चुम्बक लोहेको अपनी ओर खींचता है पूर्व पुरुषोंसे जाना गया था परन्तु उस शक्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था जिसके द्वारा लोहा चुम्बकको अपनी ओर खींचता है । अतः साइन्स द्वारा यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि चुम्बकमें भी परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम या अपरिस्पन्दात्मक परिणाम बराबर होता रहता है इस कारण स्वामी जीका यह मानना कि "चुम्बक पत्थर स्वयं नहीं हिलता, परन्तु लोहेको हिला देता है" ठीक नहीं वरन् वादिगजकेसरी जी का चुम्बकमें क्रिया मानना बिलकुल यथार्थ है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो छोटा चुम्बक बड़े लोहेसे कैसे खिंचता । (प्रकाशक)

नियम और व्यर्थ कार्य्य इस संसारमें हो रहे हैं। जड़ पदार्थोंमें भी स्वयोग्य कार्य करनेकी शक्ति होनेसे निमित्तकी प्राप्तिपर नियम पूर्वक कार्य्य हो सकते हैं; यथा सूर्य्य चन्द्रादिक का भ्रमण और ग्रहण आदि। अनेक गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं और प्रत्येक गुण क्षण प्रतिक्षण अवस्था से अवस्थान्तर हुआ करता है। प्रत्येक पदार्थमें क्षण प्रतिक्षण उसके पूर्वावस्थाकी प्रलय और उत्तरावस्थाकी सृष्टि सदैव हुआ करती है और इस प्रकार अपने प्रत्येक पदार्थके अवस्थासे अवस्थान्तर होनेसे जगत् भी सदैव चला (रूप बदला) करता है और अपने इस रूप बदलनेमें वही वही पदार्थ उपादान कारण और अन्य पदार्थ निमित्त कारण हैं। कोई ईश्वर कदापि नहीं। जगत्में कार्य दो प्रकारके हैं एक तो ऐसे कि जिसका कर्ता है, जैसे घटका कर्ता कुम्भकार। दूसरे ऐसे कि जिनका कर्ता कोई नहीं हैं, जैसे मेघ वृष्टि घासकी उत्पत्ति इत्यादि। अब इन दो प्रकारके कार्योंमेंसे घटादिकका कर्ता देखकर जिनका कर्ता नहीं दीखता है, उनका कर्ता ईश्वरको कल्पना करते हो सो आपकी इस कल्पनामें हेतु क्या है ? यदि कहोगे कि कार्यपणा ही हेतु है तो यह बताइये कि यदि कार्य होय पर उसका कर्ता नहीं होय तो उसमें क्या बाधा आवेगी ? यदि उसमें कोई बाधा नहीं आवेगी तो आपका हेतु 'शंकित व्यभिचारी' ठहरा। क्योंकि जिस हेतुके साध्यके अभावमें रहनेपर किसी प्रकारकी बाधा नहीं आवे उसको शंकित व्यभिचारी कहते हैं। जैसे किसीके मित्रके चार पुत्र थे और चारों ही श्याम थे कुछ कालके पश्चात् उसके मित्रकी भार्या पुनः गर्भवती हुई, तब वह मनुष्य कहने लगा कि मित्रकी भार्याके गर्भवाला पुत्र श्यामवर्ण होगा, क्योंकि वह मित्रका पुत्र है, जो २ मित्रके पुत्र हैं, वे २ सब श्यामवर्ण हैं, गर्भस्थ भी मित्रका पुत्र है, इस लिये श्यामवर्ण होयगा। परन्तु मित्रपुत्र यदि गौरवर्ण भी हो जाय तो उसमें कोई बाधक नहीं है। इस ही प्रकार यदि कार्य, कर्ताके विना भी होजाय तो उसमें बाधक कौन ? न्याय शास्त्रका यह वाक्य है कि "अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारण भावः" अर्थात् कार्यकारणभाव और अन्वयव्यतिरेकभाव इन दोनों में गम्य गमक याने व्याप्य व्यापक संबंध है। जैसे अग्नि और धूम इनमें व्याप्य व्यापक संबंध है; अग्नि व्यापक है और धूम व्याप्य है। जहां धूम होयगा वहां अग्नि नियम करके होगी परन्तु जहां अग्नि है वहां धूम होय भी और नहीं भी होय। जैसे तप्त लोहेके गोलेमें अग्नि तो है परन्तु धूम नहीं है। भावार्थ कहनेका यह

है कि जहां व्याप्य होता है वहां व्यापक अवश्य होता है; परन्तु जहां व्यापक होता है, वहां व्याप्य होता भी है और नहीं भी होता है। सो यहां पर कार्य कारण भाव व्याप्य है और अन्वयव्यतिरेक भाव व्यापक है। अतः जहां कार्यकारणभाव होगा वहां अन्वयव्यतिरेक भाव अवश्य होगा; परन्तु जहां अन्वयव्यतिरेकभाव है, वहां कार्यकारणभाव होय भी और नहीं भी होय। कार्यके सद्भाव में कारण के सद्भावको अन्वय कहते हैं। जैसे जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि अवश्य होती है। और कारण के अभावमें कार्यके अभाव को व्यतिरेक कहते हैं, जैसे जहां २ अग्नि नहीं है वहां २ धूम भी नहीं है। सो जो ईश्वर और लोक में कार्यकारणसंबंध है तो उनमें अन्वयव्यतिरेक अवश्यहोना चाहिये। परन्तु ईश्वर का लोक के साथ व्यतिरेक सिद्ध नहीं होता। व्यतिरेक दो प्रकार का है एक कालव्यतिरेक दूसरा क्षेत्रव्यतिरेक। ईश्वरमें दोनों प्रकार के व्यतिरेकोंमें से एक भी सिद्ध नहीं होता क्षेत्रव्यतिरेक जब सिद्ध हो सक्ता है जब यह वाक्य सिद्ध हो जाय कि जहां २ ईश्वर नहीं है वहां २ लोक भी नहीं है परन्तु यह वाक्य सिद्ध नहीं हो सक्ता है क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापी कहा जाता है अतः ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है कि जहां ईश्वर नहीं होय; इस लिये क्षेत्रव्यतिरेक सिद्ध नहीं हो सक्ता। इसी प्रकार कालव्यतिरेक भी ईश्वर में सिद्ध नहीं होता; क्योंकि कालव्यतिरेक जब सिद्ध हो जब यह वाक्य सिद्ध होजाय कि जब जब ईश्वर नहीं है तब २ लोक भी नहीं है परन्तु यह वाक्य सिद्ध नहीं हो सक्ता क्योंकि ईश्वर नित्य कहा जाता है अतः कोई काल ही ऐसा नहीं है कि जिस समय ईश्वर नहीं होय; इसलिये ईश्वर में कालव्यतिरेक भी सिद्ध नहीं होसक्ता। और जब व्यतिरेक सिद्ध नहीं हुआ तो कार्यकारणभाव ईश्वर और लोकमें सिद्ध नहीं हो सक्ता और जब कार्यकारणभाव ही नहीं तो ईश्वर इस लोकका कर्ता है ऐसा किस प्रकार सिद्धहो सक्ता है ?॥

स्वामीजी—परमात्मा का स्वभाव मैंने श्रुतिके आधार पर क्रिया बतलाया है न कि सृष्टि रचना * ईश्वर की शक्तिसे दी हुई क्रिया नित्य है। संयोग

* स्वामी जी जो यह कहते हैं कि "परमात्माका स्वभाव मैंने श्रुति के आधार पर क्रिया बतलाया है न कि सृष्टि रचना" सो ठीक नहीं क्यों कि आपने श्रुति का कोई प्रमाण नहीं दिया। आपने जो पूर्व ही "स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च" कहा था सो श्रुति का नहीं वरन वह श्वेताश्वेतर उपनिषद् अध्याय छः का मन्त्र आठवां है और उसका पूरापाठ

और वियोग दो विरुद्ध क्रियाएं नहीं वरन् क्रियाके फल हैं। क्रिया के दो फल होते हैं १-संयोग, २-वियोग। एक गेंद पूर्वको फेंकी गई, परन्तु दीवारसे लगकर फिर लौट आई। इस ही प्रकार जीवोंके कर्म्मोंके व्यवधान से संयोग और वियोग अर्थात् सृष्टि और प्रलय होते हैं। संयोग और वियोग गुण हैं, परन्तु गुण ४ प्रकारके होते हैं—(१) स्वाभाविक, (२) नैमित्तिक, (३) उत्पादक, (४) पाकज। कर्त्ता की क्रिया से उत्पन्न होने वाला गुण पाकज होता है † न

"न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च॥" है॥ आप जो यह कहते हैं कि परमात्माका स्वभाव क्रिया है न कि सृष्टि रचना सो भी मिथ्या है क्योंकि आर्य्य समाज के प्रवर्तक आपके गुरु स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज अपने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में सृष्टि की उत्पति स्थिति और प्रलयका विवेचन करते हुए पृष्ठ २२४ पर लिखते हैं कि "जैसे नेत्रका स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत्की उत्पति करके सब जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।" अब कहिये इस विषयमें पाठक आपको प्रमाणिक माने या आपके श्रीगुरूजी महाराजको ? (प्रकाशक)

† स्वभावमें दो विरोधी गुण नहीं हो सकते इस दोषसे अपने ईश्वरको बचानेके लिये चार प्रकारके गुण गिनाकर जो स्वामीजी महाराज "कर्त्ताकी क्रियासे उत्पन्न होने वाला गुण पाकज होता है" ऐसा कहकर दबे शब्दोंमें इस संसारके संयोग और वियोग (सृष्टि और प्रलय) को ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियाके पाकज गुण कहते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि आप के श्रीगुरूजी महाराज अपने वेदान्त ध्वान्त निवारणम् पुस्तकके पृष्ठ सोलह पर संयोग और वियोगको स्वाभाविक गुण सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि "जैसे मिट्टीमें मिलनेका गुण होनेसे घटादि पदार्थ बनते हैं वालुका से नहीं, सो मिट्टीमें मिलने और अलग होनेका गुण ही है, सो गुण सहज स्वभावसे है वैसे ईश्वरका सामर्थ्य जिससे यह जगत् बना है उसमें संयोग और वियोगात्मक गुण सहज (स्वाभाविक) ही है"। हम समझते हैं कि पाठकगण आपकी अपेक्षा आपके गुरूजीको ही अधिक प्रामाणिक समझेंगे।

(प्रकाशक)

कोई वस्तु उत्पन्न होती है न नष्ट। कारण से कार्य्यरूपमें आनेका नाम उत्पत्ति और कार्य्यका कारणमें लय होजानेका नाम नाश है। घास जड़ी बूटी आदि स्वयं उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु जिस प्रकार घड़ीके फनरमें चाबी देने से बाकी पुर्ज़े चल उठते हैं इसही प्रकार इस सृष्टि रूपी घड़ीके सूर्य्यरूपी फनरमें ईश्वरकी शक्तिप्रदत्त क्रियासे मेघ बनता है, वर्षा होती है, घास आदि उगती हैं। ईश्वर में दो गुण हैं। ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी है, अतः क्रियाके दो फल हैं। सृष्टि दो प्रकारकी है एक न्यायकी सृष्टि, दूसरी दयाकी सृष्टि। दयाकी सृष्टिमें सूर्य्य, अग्नि, वायु जल आदि हैं, जो ईश्वर जीवों पर दया करके उनके कल्याणके लिये देता है। और आंख, कान, धन आदि न्यायकी सृष्टि है जो ईश्वर न्याय करके जिस जीवके जैसे कर्म्म हैं उस को उसही प्रकार घटा बढ़ाकर देता है। परमात्मामें वितरेक नहीं, परमात्माके लिये यह नहीं कहा जासकता "कि अमुक देश में है अमुकमें नहीं, अमुक कालमें था और अमुक में नहीं न यही कि अमुक पदार्थ के होने से परमात्मा होता है और उसके नष्ट होजाने पर नष्ट हो जाता है।।

वादि गज केसरी जी—यदि परमात्मा में क्रिया स्वाभाविक है तो उस क्रिया के सृष्टि कर्तृत्त्व और प्रलय कर्तृत्त्व दो विरोधी फल कदापि नहीं हो सकते। गेंदका दृष्टान्त विषम है क्योंकि गेंद का लौट आना फेंकने वाले की क्रिया का फल नहीं बरन दीवाल में टक्कर लगने के हेतु से हुआ। जिस प्रकार दृष्टान्त में गेंद का एक ओर फेंका जाना और उसका पुनः लौट आना एक क्रिया के फल नहीं बरन दो निमित्त (मनुष्य की क्रिया और दीवाल के टक्कर लगने से) जन्य हैं उसी प्रकार परमात्मा की क्रिया का एकही फल (या तो सृष्टि कर्तृत्त्व या प्रलय कर्तृत्त्व) होसकता है। अतः उसकी क्रिया में दोनों विरोधी गुण कदापि नहीं। परमाणुओंमें गति नैमित्तिक है अर्थात् उन्हें जैसे निमित्त मिलते हैं वैसी गति होती है और निमित्तों की विभिन्नता से संयोग वियोग न हो सकने की दोषापत्ति व्यर्थ है। परमाणु वस्तु होने से साकार है यदि मिट्टी में ईंट की शक्ल न होती तो वह आती कहां से क्योंकि अभाव से भाव कदापि नहीं हो सकता जैसे कि बालुका में घट नहीं है तो वह उससे बन भी नहीं सकता। कार्य की कारणसे व्याप्ति है जो कि दो प्रकार का होता है एक चैतन्य और दूसरा जड़। किसी किसी चैतन्य कर्ता में कार्य्य के पूर्व ही उसकी आकृति ज्ञान सम्भव है परन्तु सबमें

नहीं। जड़ कारण में कार्य्य की आकृति का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है। परन्तु जड़ कारण भी संसार में अनेक प्रकार के कार्य्य किया करते हैं। यदि जगत् साकार होने से ही जन्य है ऐसा मानते हो तो आपको अपने ईश्वर जीव और प्रकृति को भी जन्य मानना चाहिये क्योंकि वे भी सब साकार हैं इस अर्थ कि उन्होंने आकाशका कुछ न कुछ क्षेत्र घेरा है यदि उन्हें निराकार मानो तो वे आकाश कुसुम समान अवस्तु होंगे। परमाणु आकृतिवाले हैं क्योंकि यदि उनमें आकृति न होती तो उनसे बनी वस्तुओंमें आकृति कहांसे आ जाती। जिस प्रकार कोई मनुष्य घड़ीके कमरमें चाबी भर देता है और उस से सारी घड़ी के पेच पुर्जे चला करते हैं उसी प्रकार ईश्वर ने सृष्टि रूपी घड़ी के सूर्य्य रूपी कमर में चाबी भर दी है और उसी से मेघ बनता, वर्षा होती है तथा घास आदि होती है इसमें कौनसा हेतु है यदि कार्य्यत्व ही हेतु कहा जाय तो वह पूर्व ही कथित मित्र के पांचवे गर्भस्थ पुत्र के श्याम वर्ण होने के समान शङ्कित व्यभिचारी है। जब तक ईश्वर का सृष्टि कर्तृत्व स्वयं असिद्ध है तब तक उसमें दया और न्यायकी सृष्टि कहना बन्ध्याके पुत्र का विवाह कल्पना करने के समान निरर्थक है। जब कि कार्य्य कारण भाव विना व्यतिरेक सिद्ध हुए होता ही नहीं आप परमात्मा में व्यतिरेक का अभाव सिद्ध करते हैं तब परमात्मा और सृष्टिमें कार्य्य कारण भाव कैसे माना जाय अतः सृष्टि अनादि है।

स्वामी जी—पंडित जी ने अभी कहा था कि क्रियावान ही गति दे सकता है अब यह कहना कि गेंद के लौटने की गति दीवार से उत्पन्न हुई वदतो व्याघात है। जब क्रिया रहित पदार्थ से गति नहीं आ सकती तो दीवार से गति क्योंकर आई ईश्वर नित्य है उसकी क्रिया भी नित्य है संयोग और वियोग दो क्रियाएं नहीं मैं पूर्व बतला चुका हूं कि संयोग और वियोग एक ही क्रिया के दो फल हैं। एक ही पावर इञ्जन से निकली हुई क्रिया जुदी जुदी मशीनों में जाकर जुदे जुदे काम करती है। कहीं काटती है कहीं जोड़ती है इसी ही प्रकार दैविक क्रिया एक है परन्तु जीवोंके कर्मोंके व्यवधान से होने वाली सृष्टि और प्रलयके कारण विरुद्ध फल वाली जान पड़ती है। जिन परमाणुओंका संयोग होगा उनके लिये यह आवश्यक ही हैं कि उनका वियोग भी हो, इस लिये सृष्टि के बाद प्रलय

और प्रलयके बाद सृष्टि होती चली आयी है। हम नहीं कहते कि सृष्टि कभी उत्पन्न हुई। सृष्टि ऐसी ही चली आयी है और ऐसी ही चली जायगी जैनियोंके इस कथनसे सृष्टिकी उत्पत्ति सिद्ध होती है। सृष्टि सावयव पदार्थोंका समुदाय है। सावयव पदार्थोंकी छः अवस्थाएं प्रत्यक्षमें देखी जाती हैं। जायते वर्द्धते विपरिणमते इत्यादि। प्रत्येक सावयव पदार्थ प्रथम उत्पन्न होता है अर्थात् कारण से कार्य्य रूपमें आता है, फिर बढ़ता है और फिर उसकी अवस्थामें परिवर्तन होता है। अर्थात् परिणमन होना तीसरा विकार है। जब सृष्टि परिणमन शील है तो इसकी पहिली दो अवस्थाएं भी अनिवार्य्य हैं। यह जन्यत्वसे रहित नहीं हो सकतीं। क्या वादी कोई ऐसा उदाहरण दे सकता है कि कोई पदार्थ परिणमन शील हो परन्तु उसका जन्यत्व न हो?

वादिगजकेसरीजी—क्रियावान् ही गति दे सकता है यह बहुत ठीक है। हमने यह कभी नहीं कहा कि गेंदके लौटनेकी गति दीवाल से उत्पन्न हुई। हमारा कहना यह था कि गेंदका लौट आना फेंकने वालेकी क्रियाका फल नहीं वरन दीवालमें टक्कर लगने (गेंदकी गतिको रोकने) की क्रियासे हुआ। वेदान्त सूत्रानुसार ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्वके दो विरोधी गुण कदापि नहीं रह सकते ऐसा मैं कई वार कह चुका हूं पर आप उसका समाधान नहीं करते। आपकी हीन शक्तिका दृष्टान्त विषम है क्योंकि जैसे एक लोहेको सब ओरोंसे समान शक्ति रखने वाले चुम्बक पत्थर खींचें तो वह लोहा टससे मस नहीं हो सकता। उसी प्रकार जब आर्य्यसमाजका शुद्ध अखण्ड एक रस, सर्व व्यापी और स्वाभाविक क्रिया गुण वाला परमात्मा अपने प्रत्येक प्रदेशसे एकसी हरकत देता (क्रिया उत्पन्न करता) है तो कोई भी परमाणु टससे मस नहीं हो सकता और इस प्रकार सब गुड़ गोबर हो जानेसे संयोग और वियोग परमाणुओंमें न हो सकनेसे न तो कोई चीज बन ही सकती है और न विगड़ ही। यदि दुर्जन तोष न्यायसे थोड़ी देरके अर्थ परमात्माकी क्रियासे ही परमाणुओंमें संयोग वियोग होना मानकर पदार्थोंका बनना बिगड़ना माना जाय तो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षोंके प्रलय कालमें (जो कि सृष्टिकालके समान ही संख्यामें है।) प्रकृतिके परमाणु कैसे सूक्ष्म (कारण) अवस्थामें बेकार पड़े रहें। इत्यादि अनेक दूषणोंके आनेसे शुद्ध ब्रह्मकी स्वभाविक क्रियामें दो विरोधी परिण-

मन (गुणकी पर्य्याय) कैसे रह सकती हैं। इस संसारको ईश्वर कृत सिद्ध करनेके अर्थ किसी समयमें इसका अभाव (कारण रूपमें होना) सिद्ध करना होगा क्योंकि जब तक संसार कार्य्य सिद्ध न हो जाय तब तक इसका कर्ता कोई ईश्वर कदापि माना नहीं जा सकता और कार्य्यका लक्षण "अभूत भावित्वं कार्य्यत्वम्" है। सावयव शब्दके दो अर्थ हैं एक तो अवयव सहित और दूसरा अवयव जन्य यदि आपको अवयव सहित उसका अर्थ इष्ट है तब तो आपका ईश्वर अवयव सहित (अनन्त प्रदेशी) होने पर भी जन्यत्वसे मुक्त है। यदि आपको अवयव जन्य उसका अर्थ इष्ट है तब इस जगत्को जन्यत्वसे युक्त सिद्ध करने के अर्थ उसका किसी समयमें भिन्न भिन्न अवयव (परमाणु) होना सिद्ध करिये जीव परिणमनशील होने पर भी जन्यत्व दोषसे मुक्त है। शोक कि हमारे आक्षेपोंका उत्तर न देते हुए आप विषयसे विषयान्तरमें जाते हैं॥

स्वामी जी—मैं विषयान्तरमें नहीं जाता। आपने सृष्टिको उत्पन्न होने के विषयमें कहा था उसका मैंने दलीलसे उत्तर दिया है। दलील देना, दृष्टान्त देना, और मांगना विषयान्तर नहीं। सृष्टिबनी यह आर्यसमाजका सिद्धान्त नहीं। आर्यसमाज सृष्टिको प्रवाहसे अनादि मानता है और अनादि पदार्थ विना हेतुके नहीं होते। जैसे सूर्यके विना रात दिन नहीं होते इस ही प्रकार सृष्टि और प्रलयका हेतु ईश्वर है। सृष्टि और प्रलय यह स्वभावमें विच्छेद नहीं, परन्तु यह क्रियाके दो फल हैं जो जीवोंके कर्मोंके व्यवधानसे होते हैं। सूर्यकी एक क्रिया गर्मी देना है, परन्तु जिसका मिजाज गर्म है उस को उससे दुःख होता है। जिसका ठण्डा है उसको सुख मालूम होता है॥

वादिगजकेसरीजी—जब कि आर्यसमाज सृष्टिका बनना नहीं मानता तो वह अवश्य उसे सदैवसे होना मानता होगा और ऐसा माननेसे हम को कोई विवाद नहीं। 'अनादि पदार्थ विना हेतुके नहीं होते, यह कथन आप का बड़ा ही हास्यास्पद है। बतलाइये कि आपके ईश्वर, जीव और प्रकृति (जो कि तीनों अनादि पदार्थ हैं) का हेतु क्या २ अनादि पदार्थ और हेतु "मेरी मां और बांझ" कहनेके समान है। जबतक कि इस संसारका किसी समयमें अभाव, आपके ईश्वरकी सत्ता और उसमें सृष्टि कर्तृत्वकी शक्ति सिद्ध न हो तबतक इस संसारके सृष्टि और प्रलयका हेतु ईश्वर है ऐसा कहना बन्ध्याके पुत्रके पुत्रका विवाहोत्सव मनानेके समान कपोलकल्पनामात्र है।

सृष्टि और प्रलय यह परस्पर विरोधी होनेके कारण ईश्वरकी क्रियाके फल नहीं क्योंकि ईश्वर स्वभावतः एक ही प्रकारकी क्रियाका कर्त्ता हो सकता है। यदि ईश्वरकी क्रियामें सर्वजीव अपने कर्मोंके व्यवधानसे अन्यथा (विरुद्ध) परिणमन कर सकते हैं तो जीवोंके कर्म्मोंका व्यवधान ईश्वरकी क्रियासे प्रबल है ऐसा मानना पड़ेगा ॥

स्वामी जी—मनुष्य पदार्थोंकी गतिको बदलता है रोकता नहीं। सूर्य्य की किरणें प्रति दिवस निकलती हैं कोई उनको रोक नहीं सकता। पानीके तेज़ बहावको मनुष्य पत्थर आदि लगाकर बदल देता है। क्या कोई कह सकता है कि किसीने पानीके बहावको रोक दिया। बदलना भी तो क्रिया है। जीव ईश्वरकी प्रजा है न कि प्रतिपक्षी। पाप पुण्य करती हुई प्रजा राजाकी शत्रु नहीं होती। प्रलयमें भी एक सग क्रिया स्थिर नहीं रहती।

वादि गज केसरी जी—जिस प्रकार पानीका स्वभाव ढालू जमीनकी ओर बहनेका होता है और यदि उसके मार्गमें कोई प्रबल प्रतिबन्धक न आवे तो बराबर वह जिस ओर नीची जमीन पाता है उधर बहता ही चला जाता है। पानीका बहाव भी अपने प्रतिबन्धकको (यदि वह उसके बहाव की तेजीसे निबल है) कभी कभी नष्टकर बराबर ढालू जमीनकी ओर बहता रहता है। आपका पानीके बहावका दृष्टान्त आपके पक्षका पोषक नहीं वरन विघातक होकर हमारे पक्षको ही पुष्ट कर रहा है। क्योंकि जिस प्रकार आपके दृष्टान्तमें पानीका स्वभाव बहनेका है और उसका फल ढालू जमीनकी ओर बहना है उसी प्रकार आपके दार्ष्टान्तमें ईश्वरका स्वभाव क्रिया और उसका फल सृष्टि कर्तृत्व है। जिस प्रकार दृष्टान्तमें कोई मनुष्य पत्थर आदि लगाकर या उस ओरकी ढालू जमीनमें ही कोई चट्टान, टीला, पर्वतादि प्रबल प्रतिबन्धक आकर पानीके उस बहावको दूसरी ओर बदल देते हैं उसी प्रकार दार्ष्टान्तमें जीवोंके कर्मोंके व्यवधान ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वको दूसरी ओर प्रलय कर्तृत्व रूपमें बदल देते हैं। जिस प्रकार दृष्टान्तमें पानीके बहावकी तेजीसे प्रबल प्रतिबन्धक ही पानीकी गतिको बदल सकते हैं उसी प्रकार दार्ष्टान्तमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व रूप क्रियाके फलको प्रबल प्रतिबन्धक रूप जीवों के कर्म्मोंके व्यवधान प्रलय कर्तृत्व रूप क्रियाके फलमें बदल देते हैं। अतः हमने जो पूर्व ही यह दोष दिया था कि जीवोंके कर्म्मोंका व्यवधान ईश्वर की क्रियासे प्रबल है वह ज्योंका त्यों कायम रहा और आपके दृष्टान्तसे भी

हमारे उसी दोषका समर्थन हुआ। ऐसा होनेसे आप जो ईश्वरके स्वाभाविक क्रियाके दो संयोग और वियोग फल बतलाते थे वे दोनों न रहे केवल एक ही रहा चाहे सृष्टि कर्तृत्व मानिये चाहे प्रलय कर्तृत्व *। "बदलना भी

* स्वामी दर्शनानन्द जी के गुरु स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराजने ईश्वरकी विज्ञान बल और क्रियाका प्रयोजन (फल) जगत्की उत्पत्ति माना है और उसकी सिद्धिमें आप अपने सत्यार्थ प्रकाशके २२४ पृष्टपर लिखते हैं कि "जो तुमसे कोई पूंछे कि आंखके होनेमें क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहोगे देखना। तो जो ईश्वरमें जगत्की रचना करनेका विज्ञान बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन विना जगतकी उत्पत्ति करनेके ? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे और परमात्माके न्याय धारण दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगतको वनावे" यद्यपि आप आगेकी लाइनमें "उसका अनन्त सामर्थ्य जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय और व्यवस्था करनेसे ही सफल है" ऐसा लिखकर स्थिति प्रलय और व्यवस्थाको भी ईश्वरके विज्ञान, बल और क्रियाका फल मानते हैं परन्तु इनमें से स्वाभाविक आप केवल सृष्टि कर्तृत्वको ही मानते हैं क्योंकि उसके आगे ही आप कहते हैं कि "जैसे नेत्रका स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वरका स्वाभाविक गुण जगत्की उत्पति करके सब जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है"। जब सृष्टि कर्तृत्वस्वाभाविक रहा तव उसका उल्टा प्रलय कर्तृत्व वैभाविक स्वतः सिद्ध है। वैभाविक पर निमित्त जन्य होता है अतः प्रलयमें कारण या तो जीवों के कर्म्मोंका व्यवधान (जैसा कि स्वामी दर्शनानन्द जी कहते हैं) होगा या स्वामी दयानन्द जी सरस्वतीके मतानुसार सृष्टिका सदैव तक स्थिर न रह सकना। दोनों ही हेतु पर्य्याप्त नहीं क्योंकि जीवोंके कर्मोंका यह फल हो कि वो चार अरव वत्तीस करोड़ वर्ष तक (जो कि सृष्टि कालके समान ही संख्यामें हैं) सुषुप्ति अवस्थामें (ईश्वरकी पक्की हवालातमें उसके न्याय की प्रतिक्षा करते हुए) निष्क्रिय रहै और ईश्वर उनके कर्मोंके अनुसार उनको भला बुरा फल देनेका अपना स्वाभाविक कार्य वन्द रक्खे यह सम्भव नहीं। द्वितीय यदि सृष्टि सदैव तक स्थिर नहीं रहे सकती तो इस से ईश्वरकी क्रियाका कच्चापन सिद्ध होता है और यह स्वामीजी के मतानुसार ही नित्य पदार्थके गुण कर्म स्वभाव नित्य होनेके विरुद्ध है और

क्रिया है" इस बातको हम मानते हैं पर यह क्रिया किसकी है ईश्वरकी या जीवकी ईश्वरकी तो है नहीं क्योंकि वह एक रस होनेसे अपनी क्रिया बदलता नहीं। तब वह अवश्य जीवकी है और वही आपके कथनानुसार ईश्वरसे प्रबल होनेके कारण उसकी क्रियाको बदल देता है। जीव ईश्वरकी प्रजा है यह तो आप तब कहिये जब कि उसका अस्तित्त्व और सृष्टि कर्तृत्त्व सिद्ध हो जाय। जब कि ईश्वर और उसका सृष्टि कर्तृत्त्वादि ही विवाद ग्रस्त है तब आप ऐसा कैसे कह सकते हैं? यदि दुर्जन तोष न्यायसे आपकी प्रलय थोड़ी देरको मान भी ली जाय तो जब प्रलय हो चुकी (प्रत्येक परमाणु कारण अवस्थामें होकर भिन्न भिन्न हो गये) तो जब तक सृष्टिकालका समय न आवे तब तक ईश्वरकी स्वाभाविक क्रिया क्या कार्य्य क्रिया करती है? यह बतलाइये।

स्वामीजी—सत्यके लिये दृष्टान्त होता है। जीवका स्वाभाविक ज्ञान नित्य है। सुषुप्तिमें ज्ञान कहां चला जाता है? न सुषुप्तिमें क्रिया ही नष्ट होती है। सुषुप्तिमें क्रिया अन्दरूनी रहती है, जाग्रत्में बाहरी। परमाणु प्रलयमें टूटते हैं। दीवार आदिकमें परमाणु प्रत्यक्षमें टूटते रहते हैं स्वभाव रूपान्तर होना है। रूपान्तर क्रिया बिना नहीं हो सकता। सब पदार्थोंमें क्रिया (तबदीली) होती रहती है। बनना बिगड़ना दोनों स्वभाव नहीं हैं। जीवात्मा दिनमें सज्ञान रहता है रात्रिमें ज्ञान रहित, परन्तु यह स्व-

---

इससे ईश्वर अल्प शक्ति आदि सिद्ध होता है। यदि थोड़ी देरको ऐसा ही मानलो कि यह ईश्वरकी शक्तिसे बाहर है कि वह जगत्को सदैवके अर्थ कायम रख सके तो क्या जगत्के नाश होनेके द्वितीय क्षणमें ही उसे फिर न रचना प्रारम्भ कर देनो चाहिये? पर वह चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक क्यों चुपचाप बैठा रहता है? ऐसा करनेमें क्या उसकी क्रिया उस मूर्ख राजाके समान नहीं है जो कि अपने जेलके गिरजाने पर उसको उतने काल तक बनाता नहीं जितने काल तक कि जेल प्रथम स्थिर रहा था। यदि यह कहो कि जैसे रात्रि और दिवश समकालीन प्रायः होते हैं वैसे ही सृष्टि और प्रलय समकालीन हैं पर ऐसा मानना भी असङ्गत है क्योंकि रात्रि और दिवशका कारण सूर्यका किसी क्षेत्रमें उदयास्त है अतः जब ईश्वर सदैव सर्वत्र एक रस अखण्ड व्यापक है तब प्रलयादि कैसे! इत्यादि अनेक दूषणोंसे दूषित यह पक्ष सर्वथा असान्य है॥ (प्रकाशक)

भावमें भेद कहाता है। रोशनी कांचके रंगों के समान बदलती दिखलाई देती है वह रोशनीका विकार नहीं।

वादि गज केसरी जी—यद्यपि ज्ञान जीवका स्वाभाविक गुण है परन्तु संसारावस्थामें वह जीवकी अशुद्धताके कारण कर्म मलसे आच्छादित होकर विभाव रूप परिणमता रहता है। सुषुप्ति अवस्थामें भी ज्ञान जीवमें मौजूद है पर निद्रा कर्मसे आवृत होनेके कारण वह जीवकी जागृत अवस्था के समान अपना कार्य सम्पादन नहीं कर सकता। आपका यह दृष्टान्त ईश्वरमें नहीं घटता क्योंकि अशुद्ध जीवमें तो पर निमित्त से अन्य भांति हो भी सकता है पर आपके शुद्ध एकरस अखण्ड ईश्वरकी क्रियामें विरोधी फल कदापि नहीं हो सकता। जब कि क्रिया आप अपने ईश्वरका स्वभाव मानते हैं और वह प्रलयमें भी होती है तथा उस क्रिया के संयोग और वियोग ये दो फल आप कहते हैं तो बतलाइये कि प्रलय कालमें आपके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियाका क्या फल होता है? संयोग और वियोग तो आप मान नहीं सकते क्योंकि जब प्रलय अवस्थामें प्रकृतिका प्रत्येक परमाणु भिन्न भिन्न कारण अवस्था में निष्क्रिय पड़ा है तब उसमें संयोग तो होता नहीं क्योंकि यदि संयोग मानों तो प्रकृति कारण अवस्थामें न होकर कार्य्य अवस्था में हो जायगी और वियोग भी नहीं होता क्योंकि जब प्रथम ही प्रलय होनेके समय प्रत्येक परमाणु कारण अवस्थामें होकर भिन्न भिन्न हो गया है तो अब वियोग काहेका होगा? जब ऐसा है तब क्या प्रलयास्थामें आपके ईश्वर की क्रिया निष्फल हो जाती है? हम मानते हैं कि इस संसारकी प्रत्येक वस्तु परिणमन शील है और वह रूपान्तर हुआ करती है तथा रूपान्तर विना क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम नहीं हो सकता और समस्त पदार्थोंमें रूपान्तर होने में क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम बराबर होता रहता है। पर इस से यह कैसे सिद्ध होता है कि उस क्रिया का कर्त्ता ईश्वर है या उस में ईश्वर का निमित्त है? बनना बिगड़ना दोनों एकसे नहीं इसी 'अर्थ वह ईश्वर की एकसी क्रिया के फल कदापि नहीं हो सकते, 'जीवात्मा दिन में सज्ञान रहता है रात्रि में ज्ञान रहित, ऐसा कहना अत्यन्त हास्यास्पद है क्योंकि क्या रात्रि में जीवात्मा के ज्ञान का अभाव होजाता है? स्वभाव में भेद कभी नहीं होता और यदि होता है तो वह स्वभाव नहीं वरन विभाव है। आपके रोशनी व कांच के रंगो के दृष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि

प्रलय होती नहीं वरन यों ही जीव के कर्म्मों के व्यवधान से मालूम होती है। हमारे आक्षेपोंका उत्तर तो आप देते ही नहीं।

स्वामीजी—जीवमें कर्म आदिकी वजहसे अशुद्धि आजाती है। अन्यथा—

१—जीवमें अशुद्धि कैसे आई?

२—क्रियामें फल कैसे आये?

३—परिणाम अनादि कैसे?

अग्निमें गर्म्मी व पानीमें सर्दी स्वाभाविक है। कार्य्य अनित्य होता है, क्रिया अनित्य नहीं। घड़ीका चलना कर्त्ता प्रदत्त स्वभाव है। परिणामन आप सबका बतलाते हैं, परन्तु परिणामन तीसरा विकार है। परिणामनशील पदार्थोंके जायते और वर्द्धते दो कारण होते हैं। जब परिणामन शील मानेंगे तो जायते और बर्द्धते भी मानना पड़ेगा। उत्पत्ति शून्यमें परिणामन नहीं। क्रिया की शक्ति नहीं बदलती, कार्य्य बदलता है। आप एक उदाहरण दो जिस में परिणामन हुआ हो और उस पदार्थका उत्पन्न होना सिद्ध नहीं हो।

वादि गजकेसरी जी—जीवमें अशुद्धताका कारण उसके चारित्र गुणमें कर्म मलके अनादि सम्बन्धसे रागद्वेष रूप विभाव है। जब कोई क्रिया की जाती है तो उसका कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है और उसी परिणाम का नाम फल है। परिणामन जब अनादि है तब उसका परिणाम भी अनादि ही है। जिस प्रकार घड़ी किसी घड़ीसाजकी चलायी हुई चलती है उसी प्रकार यह सारा संसार ईश्वर प्रदत्त क्रियाके बलसे चल रहा है इसमें क्या हेतु है? यदि इसमें घट पटादिका कर्ता कुलाल कुविन्दादि चैतन्य पुरुषोंको देखकर जिनको बनते नहीं देखा ऐसे सूर्य्य चन्द्रादिका कर्ता कोई चैतन्य ईश्वर कल्पना किया जाय तो यह कल्पना पूर्व ही कथित चार श्यामवर्ण पुत्रों के पिताके पांचवें गर्भस्थ पुत्रको भी श्यामवर्ण सिद्ध करनेके समान शङ्कित व्यभिचारी दोषसे दूषित है। समस्त परिणामन शील पदार्थोंमें जायते और वर्द्धते होनेका नियम नहीं। आपके प्रकृति के परमाणु परिणामन शील होने पर भी जायते और वर्द्धते दोषसे रहित हैं। यदि क्रिया एकसी ही रहै और कोई प्रबल प्रतिबन्धक न आवे तो उससे (जैसा कि पूर्व ही सिद्ध किया जा चुका है) कार्य्यका रूप बदल नहीं सकता। शोक कि आप हमारे आक्षेपों का समाधान और प्रश्नका उत्तर न देकर विषयसे विषयान्तर होते फिरते हैं।

स्वामी जी—क्रियाका फल संयोग वियोग दोनों हैं। संयोग सृष्टि और

वियोग प्रलय। स्वाभाविक क्रिया नियम पूर्वक होती है और वैभाविक क्रिया इच्छा पूर्वक होती है। सूर्य्य आदिक दृष्टान्त ईश्वरकी सृष्टि हैं चक्षु आदिक न्यायकी। दृष्टान्तका मांगना विषयान्तर नहीं।

वादि गजकेसरी जी—क्रियाका फल संयोग और वियोग दोनों कदापि नहीं हो सकते। यदि दुर्जन तोष न्यायसे थोड़ी देरको आपके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियाके फल दोनों संयोग और वियोग माने जायं तो यह संयोग और वियोग परमाणुओंके वर्तमान समयमें भी समस्त पदार्थोंमें हो रहे हैं तो इसको सृष्टि और प्रलय क्यों नहीं कहते। इस बातका क्या प्रमाण है कि कोई समय ऐसा भी आता है कि जब समस्त पदार्थोंके परमाणुओंका वियोग ही वियोग होता है संयोग कदापि नहीं? यदि थोड़ी देरको आप की प्रलय भी मान ली जाय तो उस प्रलय कालमें जब कि ईश्वरकी स्वाभाविक क्रिया बराबर होती रहती है तो वह किन परमाणुओंका (प्रलयकाल के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षोंके समयमें) संयोग और वियोग करती है क्योंकि यदि संयोग करना भी उस कालमें मानों तो फिर परमाणु कारण अवस्थामें नहीं रह सकते और वियोग तो हो ही नहीं सकता क्योंकि जब परमाणु स्वयं कारण अवस्थामें भिन्न भिन्न हैं तो वियोग किनका और किससे होगा? सृष्टि कालके प्रारम्भ होनेपर भी आपके ईश्वरकी क्रियासे परमाणु परस्पर मिल नहीं सकते क्योंकि एक ही लोहेको जब सब समान शक्तिवाले चुम्बक पत्थर सब ओरोंसे आपसमें खींचे तो वह अपने स्थानसे हिल नहीं सकता इसी प्रकार जब कि आपके कल्पित प्रलय कालमें आपका अखण्ड एक रस सर्व व्यापी ईश्वर एक सी क्रिया दे रहा है तो कोई भी परमाणु अपने स्थानसे हिल नहीं सकता अतः उनमें संयोग न हो सकनेसे किसी वस्तु का बनना असम्भव ही है। यदि आपके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियासे ही परमाणुओंमें मिलन बिछुरन मानाजाय तो कोई भी वस्तु न तो बन सकती है और न बिगड़ ही क्योंकि ईश्वरकी सब ओरसे एकसी क्रियाके कारण परमाणु अपने स्थानसे टससे मस नहीं हो सकते *। थोड़ी देर को मान लेनें

* इसी दोष से अपने ईश्वरको बचाने के अर्थ स्वामी दर्शनानन्द जी के गुरू जी महाराजने अपने सत्यार्थप्रकाश के २२५ वें पृष्ठ पर लिखा है कि "जब वह (परमात्मा) प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़कर जगदाकार करदेता है"। परन्तु विचारने का विषय है कि

पर भी जैसे लोहा चुम्बक को खींचता है, हटाता नहीं। यदि कोई अधिक शक्ति वाला हटा दे तो वह उसका हटाना कार्य्य कहा जा सकता है न कि खींचने वालेका अतः संयोग और वियोग ईश्वरकी क्रियाके दोनों फल नहीं केवल एक ही माना जा सकता है। हमारा प्रश्न आप पर ज्योंका त्यों अभी खड़ा है।

स्वामीजी—वाह ! उदाहरण दिया आपने चुम्बकका। उदाहरण गतिका नहीं मांगा गया, उदाहरण इस बातका मांगा गया है कि कोई वस्तु ऐसी नहीं जो जन्य न हो और परिणमन शील हो। चुम्बक इसका उदाहरण

परमात्मा की स्वाभाविक एक रस अखण्ड क्रियामें यह कदापि नहीं हो सकता कि किन्हीं परमाणुओं को किन्हीं से मिलावे और किन्हींको किन्हीं से क्योंकि ऐसा इच्छा पूर्वक पदार्थ बनानेसे ही होसकता है और ऐसा करने में भी उसको अपनी क्रिया में न्यूनाधिक्य करना होगा जिससे उसके अखण्ड एक रस शुद्ध आदि होने में बाधा पहुंचेगी। यदि यह कहो कि इसी दोष के निवारण करने के अर्थ तो स्वामी जी इसी पृष्टपर इन लाइनोंसे पूर्व यह लिख गये हैं कि "जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रिय गोलक हस्त पादादि अवयवोंसे रहित है परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम है उनसे सब काम करता है जो जीवों और प्रकृति से कभी न हो सकते"। परन्तु विचारणीय विषय है कि जब स्वामी जी इससे पूर्वके पृष्ट २२४ पर सर्व शक्तिमान शब्दकी व्याख्यामें कहते हैं कि "क्या सर्व शक्तिमान वह कहाता है कि जो असम्भव बातको भी कर सके! जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारणके विना कार्य को कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वरकी उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्युको प्राप्त, जड़, दुःखी अन्यायकारी, अपवित्र, और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं! जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल, और पृथिव्यादि सब जड़ोंको विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता और ईश्वरके नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता" अतः स्वतः सिद्ध है कि ईश्वर अपनी स्वाभाविक अखण्ड एक रस क्रियाको न्यूनाधिक्य करके परमाणुओंमें परस्पर संयोग नहीं करा सकता। जो हो ईश्वर की क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व कदापि बन नहीं सकते। (प्रकाशक)

नहीं। परिणमन नित्य पदार्थोंमें होता ही नहीं पानीकी गतिको पत्थर रोकता नहीं अतः पत्थर बलवान् नहीं हो सकता। कोई पदार्थ जन्य न हो और परिणमन शील हो इसका एक उदाहरण दो।

वादि गजकेसरी जी—चुम्बकका उदाहरण इस अर्थ दिया गया है कि जिस पदार्थका जो स्वभाव है उससे विरुद्ध क्रिया उसमें हो नहीं सकती। यदि हो तो उसका निमित्त वह पदार्थ नहीं कोई अन्य ही है ऐसा समझना चाहिये। पूर्व ही आपके प्रकृति परमाणुओंका उदाहरण देकर यह सिद्ध किया जा चुका है कि वे परिणमन शील होने पर जन्यत्वसे रहित हैं। यह मानना ठीक नहीं कि नित्य पदार्थोंमें परिणमन होता ही नहीं। परिणमन तो आपके ईश्वरमें भी होता है क्योंकि वह कभी सृष्टिको बनाता और कभी बिगाड़ता है। हमारा आक्षेप अभी वही चला जाता है कि यदि ईश्वर सब ओरोंसे अपनी क्रिया प्रलयकालमें समानता से देता है तब तो कोई परमाणु मिल नहीं सकते। यदि ऐसा मानों कि ईश्वर एक ओरसे ही अपनी क्रिया देता है तो भी वह मिल न सकेंगे बरन एक ही दिशामें बराबर दौड़ते चले जावेंगे॥

स्वामी जी-ईश्वर सर्वव्यापक है। सब पदार्थ उसके अन्दर हैं। अन्दरके पदार्थोंमें दिशाभेद नहीं। एक ओरसे हरकत नहीं दी जा सकती। रूपान्तर प्रतिपत्ति=परिणाम, अवयवान्तर प्रतिपत्ति=विकार। प्रकृति अवस्था है, द्रव्य नहीं *। ईश्वरमें रूप नहीं अतः रूपान्तर नहीं।

* स्वामी दर्शनानन्द जी प्रकृतिको द्रव्य न मानकर एक अवस्था मानते हैं। परन्तु विचारने का विषय है कि अवस्था किसी द्रव्यकी ही हुआ करती है अतः यह प्रकृति किस द्रव्यकी अवस्था है। जो यह कहो कि प्रकृति सत, रज, तम इन तीन द्रव्यों की अवस्था है और सत, रज, तम ये तीनों द्रव्य है संयोग, विभाग, लघुत्व, चलत्व गरुत्वादि धर्मवाले होनेसे सो ठीक नहीं क्योंकि वैशेषिकने द्रव्योंकी गुणनामें इनको स्थान नहीं दिया बरन इसके विरुद्ध इनको गुण ही माना है और स्वयं स्वामीजी अपने सांख्य दर्शन भाष्यमें सांख्यके ६१ वें सूत्र " सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः इत्यादि" के भाष्य में "सत्वगुणप्रकाश करनेवाला रजोगुण न प्रकाश और न आवरण करने वाला तमोगुण आवरण करने वाला जब यह तीनों गुण समान रहते हैं उस दशा का नाम प्रकृति

वादि गजकेसरी जी—जब कि आपका ईश्वर सर्व व्यापक, एक रस और अखण्ड है और उसके प्रत्येक प्रदेशोंमें एकसी स्वाभाविक क्रिया होती है तब पूर्व कथनानुसार कोई परमाणु अपने स्थानसे हिल नहीं सकता। यदि एक ओरसे ही क्रिया होना मानों तो यह स्वभाव, एक रस और अखण्ड आदि ईश्वरके गुणोंसे विरुद्ध है और आपके पक्षका समर्थन नहीं करता क्योंकि ऐसा होनेसे सब परमाणु एक दिशा विशेष में ही दौड़ते चले जावेंगे और उनका संयोग न हो सकेगा। यदि एक दिशासे दौड़ाना और दूसरी दिशा से परमाणुका रोकना मानों तो ईश्वर एक रस और अखण्ड (अपने समस्त प्रदेशोंमें एक सी क्रिया न होनेके कारण) नहीं रहता। जो आप यह कहते हैं कि अन्दरके पदार्थोंमें दिशा भेद नहीं सो अनुचित है क्योंकि जब आप ईश्वरको सर्व व्यापक और सब पदार्थ उसके अन्दर मानते हैं तो दिशा भेद किसी भी पदार्थमें न होना चाहिये फिर आपके वैशेषिकने दिशाको द्रव्य क्यों माना ? † जब एक ओरसे हरकत नहीं दी जा सकती और वह सब ओरसे एकसी दी जाती है तो कोई वस्तु बन नहीं सकती। जो आप ईश्वर में रूप न मानकर परिणाम नहीं मानते सो भी ठीक नहीं क्योंकि यदि ईश्वरका रूप (आकार) न माना जावे तो वह खर विषाणवत अवस्तु ही ठहरेगा।

है "ऐसा लिखते हुए सत, रज, तमको गुण सिद्ध करते हैं और वैशेषिक अपने अध्याय १ आह्निक १ सूत्र १६ में गुणका लक्षण "द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोग विभागेष्वकारण मनपेक्ष इति गुणलक्षणम्" जो द्रव्यके आश्रय रहे अन्य गुणका धारण न करे संयोग और विभागमें कारण न हो और एक दूसरे की अपेक्षा न करे करते हैं। मालूम नहीं कि स्वामीजीके ये तीनों गुण किस द्रव्यके आश्रय हैं और प्रकृति द्रव्य गुण और पर्य्यायमें क्या है? यदि द्रव्य तो उसको वैशेषिकने द्रव्यों की संख्यामें न रखकर गुण क्यों कहा, यदि गुण या पर्य्याय (अवस्था) तो किस द्रव्यकी ! इत्यादि निर्णय कुछ भी नहीं होता। (प्रकाशक)

† पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि। वैशेषिक दर्शन अध्याय १ आह्निक १ सूत्र ५। (अर्थात्) पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य है। (प्रकाशक)

स्वामीजी—अन्दरकी क्रियाके लिये यह नियम नहीं है। ज़ख़मके भरने के लिये किसी इन्द्रियकी आवश्यकता नहीं। पेटमें मल है परन्तु बदबू नहीं मालूम होती। परमात्मा विभु है उसमें तरफ (दिशा) का भेद नहीं हो सकता। यह दोष परिच्छिन्नमें हो सकता है। ईश्वर आपने परिणामी बतलाया था, अब अखंड बतलाया। परिणामीकी शक्ति बदली खंड होगया, अखंड कहां रहा। अखंडको यदि परिणामी कहो तो आप ईश्वरके स्वरूपको ही नहीं समझे। स्वरूपको समझे विना उसके गुणका ख़्याल किस प्रकार हो सकता है। जब ईश्वरको अखण्ड बतलाते हो तो जन्य पदार्थके विषयमें मांगे हुए उदाहरणमें उसका उदाहरण विषम है।

वा० दिग्गजकेसरी जी—आपके केवल इतना कह देनेसे कि 'अन्दरकी क्रियाके लिये यह नियम नहीं है। ज़ख़मके भरनेके लिये किसी इन्द्रियकी आवश्यकता नहीं। पेटमें मल है परन्तु बदबू नहीं मालूम होती', हमारा यह पक्ष कि ईश्वरकी एक रस अखण्ड क्रियासे कोई परमाणु टससे मस नहीं हो सकता और एक तरफसे क्रिया देनेसे सब परमाणु एकही ओर दौड़ते चले जावेंगे और एक ओर हरकत देने और दूसरी ओर रोकनेसे ईश्वरकी क्रिया एक रस न रहेगी कैसे खण्डित होता है सो आप ही जानते होंगे क्योंकि जब स्वभाव एकसा है क्रिया भी एकसी ही होनी चाहिये और अन्दर की क्रियामें भी विपरीतता नहीं हो सकती। परमात्माको विभु माननेपर भी भिन्न भिन्न परमाणुओंमें परस्पर दिशा भेद अवश्य मानना पड़ेगा, चाहे आप प्रलय कालमें दिशाओं (उत्तर दक्षिण आदि) की कल्पना न करें पर जब सब परमाणु भिन्न भिन्न होनेसे एक ही स्थानमें नहीं हैं वरन आपके सर्व व्यापी सारे परमेश्वरमें व्याप्त हैं तो आप उनमें परस्पर दिशा भेद न होनेकी बात कैसे कह सकते हैं? अखण्ड और परिणामीमें विरोध नहीं क्योंकि अखण्ड उसे कहते हैं जिसका खण्ड न हो और रूपान्तरसे परिणाम होता है जिसे खण्ड होना नहीं कह सकते। जीव कर्मानुसार निज जन्म धारणमें कभी घोड़ा होता है, कभी मनुष्य और कभी चींटी आदि। परन्तु इस प्रकार रूपान्तर होनेपर भी कभी जीवके खण्ड नहीं होते। जब कि हमने आपके माने हुए ईश्वरका ही दृष्टान्त दिया है जो कि परिणामी होनेपर भी जन्यत्वसे रहित है तो फिर न जानें क्यों आप यह कहते हैं कि उदाहरण विषम है। महात्मन्! पूर्व ही आपने यह कहा था कि कोई पदार्थ जन्य

र्म हो और परिणमन शील हो इसका एक उदाहरण दो और अब आपका यह कहना कि 'जब ईश्वरको अखण्ड बतलाते हो तो अन्य पदार्थके विषयमें मांगे हुए उदाहरणमें उसका उदाहरण विषम है' क्या अभिप्राय रखता है। कृपया सम्हल कर हमारे दिये हुए दोषोंका निवारण और प्रश्न का उत्तर दीजिये ॥

स्वामी जी—अन्दरूनी क्रिया चक्करदार होती है उसमें दिशा भेद नहीं दृष्टान्तसे अपने कथनको सिद्ध कीजिये। घोड़ा हाथी चींटी आदिका उदाहरण विषम है। घोड़ा आदि शरीर बनता है न कि जीव। एक पुरुष जो महलमें बैठा हुआ है उसे यदि जेलखानेमें बिठला दिया जाय तो उसकी अवस्थामें भेद आ जायगा न कि उसके जीवमें। शरीर और जीव एक नहीं है। शरीर मकान है। मकान बदलता है। उसमें बैठनेवाला नहीं। एक पुरुष जो बड़े भारी कमरेमें बैठा हुआ है यदि उसको एक कोठरीमें बैठा दिया जाय तो जीवकी शकल बदल गयी यह नहीं कहा जा सकता। हाथी घोड़ा शरीरमें परिणमन है। किसी वस्तुकी शकल आकाशके निकल जानेसे बदलती है। गेंदको दबाया उसके भीतरसे आकाश निकल गया अर्थात् कुछ कम होनेसे खण्डन होता है। जीवमें से कुछ कम नहीं होता अतएव उसका खण्डन नहीं अतःजीव परिणामी नहीं। सूक्ष्ममें स्थूलके गुण नहीं आसकते। लोहेमें अग्नि आती है। अग्निमें लोहा नहीं आता। आगमें पानीकी सर्दी नहीं आ सकती, परन्तु पानीमें आगकी गर्मी आती है। इस लिये सूक्ष्म पदार्थमें स्थूलके गुण नहीं आ सकते। जीव और परमात्मा सूक्ष्म है। चेतन सबसे सूक्ष्म है इस लिये उसमें रूप नहीं। जब रूप नहीं तो रूपान्तर कैसा?

वादिगजकेसरी जी—अन्दरूनी क्रिया को चाहे आप चक्करदार मानिये या किसी दूसरी ही भांति की, पर जब कि प्रलयकाल में कारण अवस्था को प्राप्त भिन्न भिन्न परमाणु एक ही स्थान पर नहीं बरन आपके सर्वत्र व्यापक ईश्वर में फैले हुए हैं तो उनमें परस्पर आपको दिशा भेद अवश्य मानना पड़ेगा। क्रिया को चक्करदार ही मान लीजिये पर जब कि आपके एक रस सर्व व्यापी ईश्वरके प्रत्येक प्रदेश से एक सी ही क्रिया हो रही है तब कहिये कि परमाणुओं की क्या दशा होगी क्या वे सब ओरसे एकसी ही शक्ति रखने वाले चुम्बक पत्थरों से खींचे हुये लोहे के समान अपने स्थानसे हिल सकेंगे? जब नहीं तो आपकी सृष्टि कैसे बनेगी क्योंकि परमाणु परस्पर मिलही

नहीं सकते जीवका निज कर्मानुसार घोड़ा हाथी चींटी मनुष्य आदिके शरीरमें जन्म लेने से परिणामी होनेका उदाहरण विषम नहीं क्योंकि जब जीव वस्तु है तो उसका कुछ न कुछ आकार अवश्य है और जब आकार है तो वह समस्त शरीर में एक सा आकारवाला नहीं रह सकता आपको उसे शरीराकार ही मानना पड़ेगा। यदि जीव का आकार न मानो तो वह आकाश कुसुम समान अवस्तु होगा। जीव शरीराकार ही है क्योंकि जहां जहां जीव है वहीं पर शरीरको छेदने भेदने से जीवको कष्ट होता है जहां जहां जीव नहीं ऐसे नख केशादि स्थानों को छेदने भेदने से जीवको कुछ भी कष्ट नहीं होता जब जीव शरीराकार सिद्ध हो चुका तो भिन्न भिन्न शरीर में जन्म ग्रहण करने और उनकी वृद्धि आदि होने पर उसके आकारका परिणमन अवश्य मानना होगा। इसके सिवाय जीवके क्रोधी, मानी, क्षमावान्, मूर्ख, विद्वान, होनेपर भी उसका स्वरूप बदलना अवश्य मानना होगा और ऐसा होनेपर भी वह कभी खण्ड खण्ड नहीं होता। अतः शरीर आदिके परिणमनके साथ ही जीवका भी उससे (दीपकके प्रकाशकी भांति) प्रदेशों आदिका संकोच विस्तार होने तथा गुणों के अवस्था से अवस्थान्तर होने पर परिणामी होना सिद्ध है। किसी पदार्थमें से आकाशका निकल जाना कहना अत्यन्त हास्यास्पद है क्योंकि आकाश सर्व व्यापी और क्रिया गुण रहित है ऐसा आपके वैशेषिक का मत है अतः आकाश कहीं न निकलकर जहां का तहां स्थित रहता है। जिस वस्तु में जौनसा गुण नहीं वह उसमें दूसरी वस्तु के संसर्ग से कदापि नहीं आसकता। जब कि जीव और ईश्वर दोनों रूप (आकार) वान् है तब उनमें रूपान्तर (परिणाम) होना स्वतः सिद्ध है यहां पर ईश्वर शब्दसे आप अपने माने एक सृष्टिकर्त्ता परमात्माको समझियेगा। हमारे मतसे तो प्रत्येक कर्म मल मुक्त जीव ही ईश्वर होजाता है हमारा प्रश्न अभी आप पर ज्यों का त्यों खड़ा है॥

स्वामीजी—रेलमें बैठे हुए हम रोज़ कहा करते हैं कि अजमेर आगया, लाहौर आगया, आगरा आगया, परन्तु क्या वास्तवमें ये नगर आते हैं? नहीं, यह कथन उपचारक प्रयोग है। आकाशका निकल जाना भी उपचारक प्रयोग है। जब जीव ईश्वर होकर सिद्ध शिला पर सदा के लिये लटका रहा तो ईश्वर जीव क्योंकर होसक्ता है। जीव ईश्वर होजाता है यह कथन विषम है। ईश्वर कहते हैं ऐश्वर्यवाला, परन्तु जैनियोंका जीव तो वीतराग होता है

जिसके पास कुछ न हो उसे वीतराग कहते हैं। जिसके पास कुछ हो ही नहीं, उसे ईश्वर कैसे कह सकते हैं? । फ़क़ीरको ईश्वर बतलाना बुद्धिमत्ता नहीं परमात्मा वाचक जितने शब्द हैं उनके अर्थोंसे वीतरागका मेल कभी नहीं होसकता विष्णु शब्दका अर्थ है कि जो सबमें व्यापक हो, एक देशी न हो परन्तु जैनियोंका जीव मुक्तावस्थामें शरीरसे निकलकर ऊर्द्ध गमन करता हुआ शिलासे आकर लग जाता है जिससे उसका एक देशी होना स्पष्ट है। जब एकदेशी हुआ तो विष्णु कैसे? इसही प्रकार महेश और ब्रह्मा आदिकके शब्दार्थ करने से वीतरागके लक्षण नहीं मिलते। यदि वीतराग जीव ब्रह्मा विष्णु महेश परमात्मा वाच्य ईश्वर बन जाता है तो शब्दार्थकर लक्षण बतलाओ। कहने मात्रसे काम नहीं चलता।

वादि गज केसरी जी—यद्यपि आपका यह पूछना कि जीव ईश्वर कैसे हो जाता है? उसका ईश्वरत्व किनपर है? और उसके ब्रह्मा विष्णु महेशादि नाम कैसे सम्भव हो सकते हैं? विषयान्तर है और हमारा प्रश्न आपपर वैसा ही खड़ा है परन्तु आपने जो पूछा है तो हम उसका भी उत्तर देते हैं। इसकी व्याख्याके अर्थ एक घन्टेकी ज़रूरत है परन्तु पांच मिनिटमें ही जो कुछ हो सकता है यथा साध्य कहते हैं। द्रव्यका लक्षण "गुण समुदायो द्रव्यम्,, है और वह जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश और काल इस प्रकार छः हैं। धर्म्म, अधर्म्म आकाश और काल इन चार द्रव्योंमें स्वाभाविक ही परिणमन होता है और शेषके दो जीव और पुद्गलमें स्वाभाविक और वैभाविक दोनों ही। जीव और पुद्गलका परस्पर बन्ध होने से जीवमें अशुद्धता होती है। जीवका लक्षण "चेतना लक्षणो जीवः,, चेतना और पुद्गलका "स्पर्शरसगन्धवर्णवत्वं पुद्गलत्वम्,, स्पर्श रस गन्ध और वर्ण है। पुद्गलके तेईस विभाग (Classifications) हैं जिनमें कि केवल आहार, भाषा, मन, तैजस और कार्माण इन पांच वर्गणाओंका जीव से सम्बन्ध होता है शेष अठारह का नहीं। जिस प्रकार अग्निसे सन्तप्त गर्म लोहे का गोला जलको अपने में खींचकर वाष्परूप कर देता है उसी प्रकार अनादि कर्म्मके बन्धसे विकारी आत्मा अपने चारित्र गुणकी विभाव रूप परिणति रागद्वेषसे मन, वचन, काय द्वारा तीनों लोकमें व्याप्त सूक्ष्म कार्माण वर्गणाओं को अपनी ओर आकर्षित कर कर्म्मरूप परिणमाता है और वह कर्म्म आत्माके गुणोंको आच्छादन और विभावरूप किया करते हैं। जिस प्रकार बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज हुआ

करता है उसी प्रकार इन रागादि भाव कर्म्मसे द्रव्य कर्म्म और द्रव्य कर्मसे भाव कर्मकी सन्तान बराबर जारी रहा करती है। यदि आप बीजको (जो कि अनादिकालसे बीज वृक्षकी सन्तान प्रति सन्तान रूपसे बराबर चला आ रहा है) भून डालें तो वह नवीन वृक्षको कदापि उत्पन्न नहीं कर सकता। उसी प्रकार जब यह जीव अपने रागादिकको नष्टकर देता है तो इसके नवीन कर्म्मोंका बन्ध नहीं होता और प्राचीन कर्म्म अपनी स्थिति पूर्ण कर या ध्यानाग्नि द्वारा उदीर्णाको प्राप्त होकर आत्मासे सम्बन्ध छोड़ जाते हैं और सकल कर्मोंसे विप्रमुक्त होकर यह आत्मा मोक्षको प्राप्तकर ईश्वर हो जाता है। इस बातका उत्तर कि ईश्वर ऐश्वर्यवाले को कहते हैं बीतराग होकर परमात्मा का ऐश्वर्य्य क्या है यह है कि आत्मा अनन्त गुणोंका समुदाय है और वे गुण अनादि कालसे ... ...

(नोट) वादि गजकेसरी जी इतना ही कह पाये थे कि श्रीमान् रायबहादुर पंडित गोविन्द रामचन्द्र जी खांडेकर (भूतपूर्व असिस्टैंट जुडिशल कमिश्नर कुछा प्रचन) आदि प्रतिष्ठित पुरुषोंके अनुरोधसे सभापति जी ने वादि गजकेसरी जी को विषयान्तर पक्षका उत्तर देनेसे रोक दिया और स्वामी जी से भी प्रार्थना की कि वह विषयान्तर प्रश्न न करें। स्वामी जी बधिर होनेके कारण ऊंचा सुनते थे अतः आर्यसमाजकी ओरके अग्रेसर बाबू मिट्ठनलाल जी ने स्वामी जी को कई वार विषयान्तर न जाने तथा वादि गजकेसरी जी के प्रश्नका उत्तर देनेकी प्रार्थना की। (प्रकाशक) *

* इस कारण कि सभापति जी के रोक देने से वादि गज केसरी जी स्वामी दर्शनानन्द जी के इस वार किये हुए समस्त प्रश्नोंका उत्तर न दे सके अतः शेष स्वामी जी के प्रश्नोंका उत्तर पाठकोंके अवलोकनार्थ यहां प्रकाशित किया जाता है। वादि गजकेसरी जी संक्षेपतः यह तो बतला ही चुके हैं कि जीव ईश्वर कैसे हो जाता है अतः अब यह सिद्ध किया जाता है कि जीव ही ईश्वर हो जाता है और उसमें हेतु यह है किः—

ज्ञान गुण केवल जीवमें ही है। कोई जीव स्वल्प जानता है और कोई विशेष और जीवोंके जाननेकी कोई मर्यादा नहीं है क्योंकि जिस वस्तुका ज्ञान आज असम्भव समझा जाता है कल ही कोई जीव उसका ज्ञायक उत्पन्न हो जाता है इससे यह सिद्ध होता है, कि ऐसे भी जीव होंगे जो कि सर्व पदार्थोंको जानते होंगे क्योंकि यह सर्व पदार्थ जो ज्ञे-

स्वामी जी—जगत् उसको कहते हैं जो चले। सृष्टि उसे कहते हैं जो सृजी गयी है। चलना और बनना क्रियासे होता है। क्रिया बिना कर्ताके होती नहीं इस लिये सृष्टिका कर्ता स्वयं सिद्ध है। कर्ता दो प्रकारके होते हैं

यस्वरूप हैं विना किसीके ज्ञानमें आये रह नहीं सक्ते और वह केवल जीव ही हैं जो कि उनको जान सकते हैं। यदि जीवोंसे भिन्न कोई अन्य ऐसा अनादिसे ही व्यक्ति अपेक्षा सर्वज्ञ विशिष्टात्मा मानिये जो कि सब का ज्ञायक हो तो ऐसा विशिष्टात्मा किसी भी युक्ति युक्त प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता अतः यह जीव ही सर्वज्ञत्व गुण युक्त है ऐसा सिद्ध हुआ। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जितनी जितनी बीतरागता बढ़ती जाती है उतनी उतनी ज्ञानकी शक्ति भी, और इसी कारण प्रत्येक ही मतमें संसारके विरक्त पुरुष ही भविष्यवक्ता और विशेष ज्ञानी माने गये हैं। जब ज्ञानकी वृद्धि वीतरागताके साथ ही होती है तो यह स्वतः सिद्ध है कि जो सर्वथा बीतराग है वही सर्वथा पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ है। इस कारण यह हेतु जैनियोंके परमात्माओंको सर्वथा सर्वज्ञ सिद्ध कर रहा है जो कि परमात्माका मुख्य गुण है॥

स्वामी जी का यह कथन ठीक नहीं कि जिसके पास कुछ न हो उस को वीतराग कहते हैं क्योंकि यदि वीतरागका यही लक्षण माना जावे तो जिनके पास अपने पूर्व जन्माज्जित पापोंसे कुछ नहीं ऐसे भूखों मरनेवाले महा कङ्गले भी वीतराग सिद्ध होंगे। वीतरागका अर्थ है वैराग्य या राग द्वेषका अभाव और यह जीवको हितकर है तभी तो आपके गुरू जी महाराजने अपने सत्यार्थ प्रकाशके पांचवें समुल्लासमें सन्यासियोंका विशेष धर्म मनुस्मृतिके छठे अध्यायके आधार पर वर्णन करते हुए "इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेणच। अहिंसयाच भूतानाममृतत्वाय कल्पते"॥ इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक रागद्वेषको छोड़ना बतलाया है और सप्तम समुल्लासमें स्तुति और प्रार्थनाके प्रकरणमें उपासना योगका दूसरा अङ्ग वर्णन करते हुए धारण करनेका उपदेश दिया है। यदि वीतरागता कुछ पास न होनेसे ही हो सकती है तो मरभुक्खे परम सन्यासी और ईश्वरोपासना करने वाले हैं ऐसा मानना होगा। अतः वीतरागका अर्थ जैसा कि स्वामी जी करते हैं फकीर फुकरे अर्थात् कुछ पास न रखने वाले महा कङ्गले नहीं वरन् किसी भी पदार्थमें रागद्वेष न रखने वाले (महान् विरक्त)

एक स्वाभाविक और दूसरा नियम पूर्वक । हर एक वस्तु संयोग युक्त है इस लिये संयोगका देने वाला कर्त्ता होगा । हर एक फल फूल पत्ते आदिक व-

है । रही यह बात कि वीतराग होनेपर उस ईश्वरका ऐश्वर्य्य क्या ? सो यह पहिले ही वतलाया जा चुका है कि जीव द्रव्य अनन्त गुणोंका समुदाय है और वे उसकी संसारावस्थामें अनादि कर्म सम्बन्धके कारण विकारी हैं अतः यह सिद्ध ही है वे जीवके गुण होनेपर भी जीवके आधिपत्यसे रहित हैं अर्थात् शुद्ध रूप (जीवके अनुसार) न परिणाम कर कर्मानुसार परिणमित हैं । जिस समय कर्मका अभाव हो जाता है जीवके उन्हीं गुणोंका शुद्ध परिणमन होने लगता है अर्थात् वे जीवके आधिपत्यमें (जैसा चाहिये वैसा) उसके अनुसार परिणमने लगते हैं अतः वीतराग परमात्माका ऐश्वर्य्य उसके समस्त आत्मिक गुणोंपर है क्योंकि अन्य द्रव्यका परिणमन अन्य द्रव्यके आधीन कदापि नहीं । इस कारण जगत् वन्द्य वीतराग परमात्माका ऐश्वर्य्य उनके आत्मिक गुण हैं ।

सकल और निकल दोनों प्रकारके परमात्मा सर्वज्ञ हैं अतः वह अपने ज्ञानकी अपेक्षा सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु नामसे पुकारे जाते हैं क्योंकि उनका ज्ञान समस्त पदार्थोंको विषय भूत करता है अर्थात् समस्त पदार्थोंमें व्यापक है । मोक्ष मार्ग और समस्त वस्तुओंके यथार्थ स्वरूपका विधान (प्रगट) करनेसे परमात्माका नाम ब्रह्मा है । समस्त ऐश्वर्य्य वालोंमें श्रेष्ठ होनेसे उसी परमात्माका नाम महेश है । यदि ब्रह्मा विष्णु महेश शब्दका यह अर्थ न लेकर यथाक्रम संसारका वनाने वाला, संसारका पालन करनेवाला और संसारका नाश करने वाला लो तो वह भी परमात्मामें भूत नैगम नय (पेन्शन प्राप्त तहसीलदारको तहसीलदार कहनेकी रीति) से घटता है क्योंकि परमात्माने अपनी पूर्व संसारावस्थामें अपना संसार (चतुर्गति परिभ्रमण) अनादिकालसे स्वयंरचा था अतः वह निज संसारोत्पत्तिसे ब्रह्मा और अपने उस अनादि संसारका निज रागद्वेष विभावोंसे वरावर (मोक्ष प्राप्त कर लेने तक) पालन करते रहनेके कारण विष्णु और (मोक्ष प्राप्त कर लेनेपर) उसका नाशकर देनेसे महेश नाम वाले हैं । इत्यादि अनेक रीतियोंसे यह ही नहीं वरन् परमात्मा वाचक समस्त नाम सिद्ध किये जा सकते हैं । (प्रकाशक)

स्तुमें जो बनावट है वह नियम पूर्वक कर्त्ताका लक्ष्य करा रही है * ग्रहण आदिक नियम पूर्वक होता है। क्रियाका कर्ता विना चेतनके हो नहीं सकता इस लिये सिद्ध है कि सृष्टिका कर्ता चेतन ईश्वर है।

वादि गजकेसरी जी—हम प्रथम ही कह चुके हैं कि गुणोंके समुदाय को द्रव्य कहते हैं और प्रत्येक गुण तथा प्रतिक्षण अवस्थासे अवस्थान्तर हुआ करता है। षट् द्रव्य (जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) का समुदाय ही जगत् है। जब कि प्रत्येक ही द्रव्य प्रतिक्षण अवस्थासे अवस्थान्तर होता है तो उसका समूह रूप जगत् भी सदैव चला (रूप बदला) करता है। जब कि जगतकी समस्त वस्तुओंमें प्रतिक्षण अवस्थासे अवस्थान्तर होनेमें पूर्व क्रम वर्ती पर्यायका नाश और उत्तर क्रमवर्ती पर्यायका उत्पाद होता है तो समस्त वस्तुओंके समूह रूप जगतको उसके समस्त वस्तुओंमें नवीन पर्यायोंका प्रतिक्षण सृजन (उत्पाद) होनेकी अपेक्षासे इसको सृष्टि भी कह सकते हैं। हम मानते हैं कि द्रव्योंके रूपान्तर होने और उनकी नवीन पर्यायोंके उत्पादमें क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम होता है† । पर यह नवीन पर्यायोंके उत्पादकी क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम शुद्ध जीव शुद्ध पुद्गल (परमाणु) धर्म अधर्म, आकाश और कालमें तो स्व स्वरूपानुसार स्वाभाविक काल द्रव्यके उदासीन कारणपनेसे होता है और बन्धावस्थाको प्राप्त अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गल (स्कन्ध) में वैभाविक रीतिसे अन्य बाह्य निमित्तानुसार और काल द्रव्यके उदासीन कारणपनेसे। अतः प्रत्येक शुद्ध द्रव्य स्वयं निज क्रिया और परिणाम या केवल परिणामका कर्ता है और

* पाठकोंको स्मरण होगा कि प्रथम ही स्वामी जी उपनिषद् वाक्य "स्वाभाविकीज्ञानबल क्रिया च" का हवाला देकर ईश्वरको स्वाभाविक कर्त्ता सिद्ध करते थे परन्तु अब आप दो प्रकारके (एक स्वाभाविक और दूसरा नियम पूर्वक) कर्त्ता कहकर उसको नियमपूर्वक कर्त्ता सिद्ध करते हैं सो ठीक ही है कि समझ जानेपर बुद्धिमानोंको हठ करना कदापि योग्य नहीं। (प्रकाशक)

† जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें तो क्रिया और परिणाम दोनों ही हैं और शेषकी चार धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल परिणाम ही। (प्रकाशक)

अशुद्ध द्रव्योंमें जीवके जितने अंश कर्मसे आच्छादित हैं उतने अंशोंकी क्रिया और परिणाम या केवल परिणामका कर्ता कर्म और जितने अंश कर्मोंसे आच्छादित नहीं उतने अंशोंकी क्रिया और परिणामका कर्त्ता जीव है और पुद्गलके स्कन्धमें वही पुद्गल परमाणु वैभाविक रीतिसे क्रिया और परिणमन करते हैं।

अतः किसी भी द्रव्यके क्रिया और परिणाम या केवल परिणाममें (चाहे वह क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम स्वाभाविक हो या वैभाविक) आपके माने हुए सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके निमित्त (सहायता) की कोई आवश्यकता नहीं है और न ऐसा निमित्त कारण ईश्वर कोई है ही । यदि थोड़ी देरको आपके ही कथनानुसार आपका ईश्वर सृष्टिकर्त्ता मानलिया जाय तो वह आपके बतलाए हुए दो प्रकारके (एक स्वाभाविक और दूसरे नियमपूर्वक) कर्त्ताओंमेंसे सृष्टिकर्तृत्वके विरोधी गुणोंके कारण न तो स्वाभाविक ही कर्त्ता सिद्ध होता है और जगत्‌में हजारों अनियम पूर्वक कार्य होनेसे न नियम पूर्वक कर्त्ता ही । संयोग दो प्रकारके होते हैं एक तो एकत्त्व बुद्धिजनक बन्धसंयोग यथा वृक्षके एक पत्तेमें परमाणुओंका और दूसरा पृथक्त्व बुद्धिजनक अबन्ध संयोग यथा दण्डी और दण्डका । पर इन दोनों प्रकारके संयोगोंमें आपके ईश्वरकी कोई भी आवश्यकता नहीं । हर एक फूल पत्ता किसी नियम पूर्वक कर्त्ताका बनाया हुआ है * कार्य होने से घट पटादिवत्, इसकी सिद्धिमें यदि कार्यत्त्व ही हेतु मानाजाय तो यह पूर्व कथित किसी मनुष्यके चार श्यामवर्ण पुत्रोंको देखकर उसके पांचवें गर्भस्थ पुत्रको भी श्यामवर्ण मा-

---

* हरएक फूल पत्ता किसी नियम पूर्वक कर्त्ताका बनाया या पैदा किया हुआ है ऐसा नियम नहीं क्योंकि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज अपने सत्यार्थप्रकाशके अष्टम समुल्लासमें पृष्ठ २२१ पर यह लिखते हैं कि "कहीं कहीं जड़के निमित्तसे जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है जैसे परमेश्वरके रचित बीज पृथिवीमें गिरने और जल पानेसे वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़के संयोगसे बिगड़ भी जाते हैं" । रही परमेश्वर के रचित बीज और इसके आगेकी लाइन 'परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीवके आधीन है' की बात सो साध्य है क्योंकि जब ऐसे रचयिता परमात्माकी सत्ता ही लक्षण और प्रमाणोंसे असिद्ध है और बिना चेतन कर्त्ताके ही अनेक नियम पूर्वक कार्य होना प्रत्यक्ष है तो वैसा कैसे माना जा सकता है ? (प्रकाशक)

नतेके समान शङ्कित व्यभिचारी हेत्वाभास है क्रिया चेतन और अचेतन दोनों ही पदार्थोंमें होती है और अनेक कार्य्य इस जगत्में चेतन कर्त्ता के कियेहुए होते हैं और अनेक अचेतनके भी। यथा जौ चने चेतन कर्त्ताके बोनेसे होते हैं और घास फूस विना चेतन कर्त्ता ही। हमारा प्रश्न अभी आप पर वैसाही खड़ाहै॥

स्वामीजी--पण्डितजीने सृष्टिकर्त्ता मानलिया। घास फूस आदि सूर्य्यके आकर्षण तथा पानीके हेतुसे होते हैं। यह मैं पहिले ही कहचुका हूं। विना कर्त्ताकी सृष्टिका एक उदाहरण दीजिये। घड़ी विना चलाये नहीं चलती। ईश्वरके सब काम नियमपूर्वक हैं। अन्दरकी गतिमें दिशाभेद नहीं होता, परन्तु वह क्रिया चक्करमें होती है। ग्रहण आदिक नियमपूर्वक कर्त्ताका लक्ष्य करा रहे हैं। इसका आपने उत्तर नहीं दिया॥

वादिगजकेसरीजी—हमने आपका सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कदापि नहीं माना। जब कि 'घास फूस आदि सूर्यके आकर्षण तथा पानीके हेतुसे होते हैं' यह आप भी मानते हैं तो इन घास फूस आदिके कर्त्ता और कारण वही सूर्यादि हैं न कि कोई ईश्वर। पूर्व ही कईवार कहा जा चुका है कि कार्यकी कारण के साथ व्याप्ति है न कि आपके चैतन्य कर्त्ताके साथ। चैतन्य कर्त्ता के विना कार्यका उदाहरण यही वनस्पति आदिका उत्पन्न होना भी है। जिस प्रकार घड़ी किसी चेतन घड़ीसाजकी चलायी हुई चलती है उसी प्रकार यह संसार भी किसी ईश्वरका चलाया चलता है इसमें हेतु क्या है? यदि कार्य्यत्व ही तो वह पूर्व कथित हमारे मित्रके गर्भस्थ पञ्चम पुत्रके श्याम वर्ण होनेके उदाहरण समान शङ्कित व्यभिचारी है। आपके ईश्वरके सब काम नियमपूर्वक होते हैं, आपकी इस कल्पनाका खण्डन पूर्व ही कई बार किया जा चुका है और अब फिर भी किया जाता है कि संसार के सब काम नियमपूर्वक नहीं क्योंकि कहीं वर्षा कितने ही दिन होती है और कहीं कितने ही दिन और कभी विशेष और कभी न्यून और कभी आवश्यकता पर बिल्कुल नहीं आदि। जब कि भिन्न भिन्न कारण अवस्था को प्राप्त परमाणु प्रलय कालमें एकही स्थानपर नहीं वरन् आपके ईश्वरमें समस्त व्याप्त हैं तो उनमें परस्पर दिशा भेद अवश्य है चाहे आप उसमें क्रिया भले ही चक्करसे मानें। ग्रहण आदिके नियम पूर्वक होनेके कारण सूर्य्य आदिककी नियम पूर्वक गति आदि हैं न कि आपका माना ईश्वर। यदि ईश्वरको ही कारण मानिये तो अन्वय व्यतिरेक सम्बन्धके अभावमें उसकी व्याप्ति नहीं बनती और न उसमें सृष्टि और प्रलयके दो विरोधी गुण ही सम्भवित होते हैं॥

स्वामी जी-एक पदार्थकी दो मुख्तलिफ़ क्रिया हो सकती हैं। एक जीव जिसके स्वभावमें गर्मी अधिक है उसको सूर्य्यसे दुःख होता है और जिसके स्वभावमें सर्दी अधिक है उसको सुख होता है। इसमें सूर्य्यके दो कार्य्य नहीं, परन्तु जीवके कर्मोंके स्वभावसे सुख दुःख होता है। अन्दरकी क्रियाके लिये दिशाका भेद नहीं होता। जो जिसके सामने आया मिलगया। हांडीमें चावल पकते हैं, एक दूसरेसे मिल जाते हैं। यह नहीं होता कि चावल सब एकही दिशामें जाते हों। आगकी हरकतसे चावल मिले, अतएव आगका स्वभाव संयोग वियोग हुआ *। आगकी हरकत स्वाभाविक है। ईश्वर बाहरसे हरकत नहीं देता। वह आगके समान अन्दरसे हरकत देता है, क्योंकि वह परमाणु परमाणुमें व्याप्त है। हरकत संयोग वियोगमें रहती है। हरकत जारी नहीं सदा बनी रहती है। हरकतके दो फल प्रत्यक्ष हैं सूर्य्यकी एक क्रियाके दो फल सुख और दुःख दोनों हैं।

---

* एक वस्तुमें दो विरोधी स्वभाव नहीं हो सकते ऐसा स्वामीजीको भी इष्ट है और इसका प्रतिपादन उन्होंने अपने वैदिक यन्त्रालयमें मुद्रित "सांख्य दर्शन" के ९४ सूत्र "उभयथाप्यसत्करत्वम्" के भाषानुवाद में प्रश्नोत्तरों द्वारा किया है। आप स्वयं प्रश्न करते हैं कि "एक वस्तुमें दो विरुद्ध स्वभाव हो नहीं सकते। यदि रचना ईश्वरका स्वभाव मानोगे तो विनाश किसका स्वभाव मानोगे। अपने इसी प्रश्नका उत्तर आप स्वयं लिखते हैं कि "यह शङ्का परतन्त्र और अचेतनमें हो सकती है क्योंकि कर्ता स्वतन्त्र होता है और स्वतन्त्र उसे कहते हैं जिसमें करने न करने और उलटा करनेकी सामर्थ्य हो" ।यद्यपि आपने यहां अप्रत्यक्ष रीतिसे सृष्टि कर्तृत्त्व ईश्वरका स्वभाव मान लिया है और अप्रत्यक्ष ही क्यों वरन इन प्रश्नोंके ऊपर आप स्वयं अपने इन शब्दोंसे कि "ईश्वर इन दोनों (मुक्त और बद्ध) अवस्थाओंसे पृथक् है और जगत्का करना उसका स्वभाव है इस लिये इच्छाकी आवश्यकता नहीं" प्रत्यक्ष रीतिसे भी स्वीकार करते हैं कि सृष्टि कर्तृत्त्व ईश्वरका स्वभाव है! परन्तु यदि हम थोड़ी देरको उनके "जगतका करना उसका (ईश्वरका) स्वभाव है" इन शब्दोंपर ध्यान न दें और स्वयं ही उठाये हुए आपके प्रश्नके समाधानसे संतोष मानलें तो भी यह निश्चय है कि आगका स्वभाव संयोग वियोग नहीं हो सकता क्योंकि आपके लेखानुसार ही ये दोनों विरोधी गुण जड़ और परतन्त्र आगके स्वभावमें कदापि नहीं हो सकते। (प्रकाशक)

वादिगजकेसरी जी-प्रथम ही आपने कहा था कि 'संयोग और वियोग दो विरुद्ध क्रियायें नहीं वरन क्रियाके फल हैं क्रियाके दो फल होते हैं संयोग और वियोग' और अब आप कहते हैं कि 'एक पदार्थकी दो मुख्तलिफ़ क्रिया हो सकती हैं, और आगे चलकर आप कहते हैं कि 'हरकतके दो फल प्रत्यक्ष हैं' यह परस्पर स्ववचन बाधितपना क्यों ? यह हम मानते हैं कि एक अशुद्ध द्रव्यमें वाह्य प्रबल व्यवधान से भिन्न प्रकारकी क्रिया और परिणाम हो सकते हैं पर वैसा होना आपके शुद्ध अखण्ड एक रस ईश्वरमें सर्वथा असम्भव है। आपका दृष्टान्त विषम है क्योंकि सूर्य्यका स्वभाव गर्मी देना है न कि किसीको सुख दुख देना। सूर्य्यका दृष्टान्त बिल्कुल विरुद्ध है क्योंकि सूर्य्य गर्मी देनेमें उदासीन निमित्त कारण है और परमात्माको आप गति देनेमें प्रेरक कारण मानते हैं। जब तक परमात्माकी सत्ता ही असिद्ध है तब तक आप उसको उदासीन निमित्त कारण नहीं मान सकते। अतः दृष्टान्त किसी अंशमें नहीं मिलता। क्रिया चाहे अन्दरसे दी गयी हो या बाहरसे पर उसमें आपको दिशा भेद अवश्य मानना पड़ेगा और आपके अन्दर और बाहर यह शब्द ही ऊपर नीचेके समान दिशा भेद प्रगट करते हैं। जब कि आपका परमेश्वर परमाणुओंमें भीतर और बाहर सर्वत्र व्यापक है तथा अखण्ड और एक रस है तो वह केवल भीतरसे ही हरकत नहीं दे सकता क्योंकि कहीं कैसी और कहीं कैसी उसकी अवस्था होनेसे वह अखण्ड और एक रस कदापि नहीं रह सकता। यदि थोड़ी देरको आपकी भीतरसे ही हरकत मान ली जाय तो भी सबको एकसी हरकत मिलनेपर उनमें संयोग वियोग कदापि नहीं हो सकता क्योंकि यदि हो सकता होता तो प्रलयकालमें भी उस क्रियाके सद्भावमें वैसा बराबर होता रहता। आगकी अन्दरूनी हरकतसे हांडीमें चावल पकनेका आपका दृष्टान्त बिल्कुल विपरीत है क्योंकि दृष्टान्तमें अग्निके खण्ड द्रव्य होने व सब ओरसे हरकत न देनेके कारण उसके परमाणुओंमें निमित्तानुसार भिन्न भिन्न देशान्तर प्राप्तिसे चावलोंका भिन्न भिन्न दिशामें गमन होता है और दार्ष्टान्तमें ईश्वरके अखण्ड एक रस सर्व व्यापी होनेसे परमाणुओंका वैसा होना असम्भव है। चावलों में संयोग और वियोग दोनों होनेके कारण उनमें अग्निकी तारतम्यता तथा जलादिके व्यवधान हैं। जब कि आपका ईश्वर एक रस और सर्वव्यापी होने से परमाणुओं के भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है तो फिर वह भीतरसे ही क्यों हरकत देता है? यह हम

मानते हैं कि हरकत संयोग और वियोग में होती है पर एक हरकत का एक ही फल हो सकता है। हरकत देनेवाले के अभाव में हरकत का भी अभाव होजाता है अतः यह कहना ठीक नहीं कि हरकत सदा बनी रहती है। आपके वेदान्तानुसार संयोग और वियोग दो विरुद्ध गुण (फल) होने के कारण एक क्रियाके फल नहीं हो सकते। जब कि किसी समयमें इस संसारका अभाव, आपके माने हुए ईश्वरकी सत्ता, उसके क्रियाकी आवश्यकता, अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध न होनेसे उस क्रियामें परमाणुओंको हरकत देना आदि सिद्ध नहीं होते तो आपका ईश्वर कैसे सृष्टिकर्ता माना जा सकता है? साइन्स भी ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता नहीं मानता। वह पदार्थोंके स्वभावसे ही सृष्टि का सब काम चलना मानता है। हमारा प्रश्न आपपर ज्योंका त्यों खड़ा है।

स्वामीजी-सुख दुःख अपने स्वभावानुसार पाये जाते हैं। साइंस भी प्रत्येक वस्तुका हेतु बतलाता है। जिससे सृष्टिका हेतु परमात्मा सिद्ध होता है। अग्निका उदाहरण विषम नहीं। उदाहरण धर्ममें दिया जाता है। अग्नि परिमाणुओंमें व्याप्त है वह चारों ओरसे हरकत देता है। ईश्वर भी सारे देशमें व्याप्त है। देगचेमें गर्मी एकदेशी नहीं। ब्रह्माण्डमें परमात्मा भी एकदेशी नहीं, इसलिये अग्निका उदाहरण विषम नहीं। आप धान और चावलका दृष्टान्त जो कि भिन्न भिन्न समयमें पैदा होते हैं अनादिके साथ कैसे देदिया करते हैं। चावलोंको हरकत जो मिलती है वह भी अन्दरकी हरकत है और सृष्टिकी हरकत भी परमात्माके अन्दरसे है।

वादि गजकेसरी जी-सूर्यकी गर्मी देने रूप क्रियासे जीवोंको सुख दुख प्राप्त होनेका खण्डन हम पूर्व ही कर चुके हैं। हम मानते हैं कि साइन्स प्रत्येक वस्तुका हेतु अपनी पहुंचके अनुसार बतलाता है पर उससे सृष्टिका हेतु परमात्मा कैसे सिद्ध होता है सो आपही जानते होंगे। अग्निका उदाहरण बिलकुल विषम है क्योंकि अग्नि असंख्यात परमाणु वाला खण्ड पदार्थ और ईश्वर शुद्ध एक रस अखण्ड द्रव्य है। प्रथम आपने कहा था कि 'ईश्वर बाहरसे हरकत नहीं देता। वह आगके समान अन्दरसे हरकत देता है' और अब आप कहते हैं कि 'अग्नि परमाणुओंमें व्याप्त है वह चारों ओर हरकत देता है' इन दो परस्पर मेरी मां और बांझके समान विरुद्ध वाक्योंमें आपका कौन सा वाक्य प्रमाण माना जाय। धान और चावलका दृष्टान्त हम कर्ममल युक्त जीवके नाना पर्यायोंमें उत्पन्न होनेके विषयमें देते हैं जो कि ठीक ही

है क्योंकि जब तक चावलके ऊपर धानका छिलका रहता है तभी तक चावल बराबर उत्पन्न होता रहता है और उसके दूर हो जानेपर कदापि नहीं उसी प्रकार जब तक जीवके ऊपर कर्मरूप छिलका लगा हुआ है तभी तक वह जन्म ग्रहण करता है और उसके अभावमें कदापि नहीं। अभी आपने कहा था कि अग्नि चारों ओरसे हरकत देता है और अब आप कहते हैं कि 'चावलोंको हरकत जो मिलती है वह भी अन्दरकी हरकत है'। इन दोनोंमें ठीक कौन? महात्मन्! ज़रा विचार कर हमारे प्रश्नोंका उत्तर दीजिये।

स्वामीजी—इच्छा कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होती है इस लिये इधर उधर जाती है। अग्निमें इच्छा विषम है। अग्नि एक है, दो नहीं। जहां वैधर्म्य नहीं हो वहां वैषम्य नहीं। जीव और ईश्वर व्याप्तिसे विभु हैं। परमाणु बहुत हैं, परन्तु अग्नि एक है। वैधर्म्यका विषय युक्त है अतः वैषम्य नहीं गति देनेको ईश्वर और अग्नि दोनोंमें एकता है। गति या तो अग्निसे आयेगी वा ईश्वरसे। इसही लिये अग्नि शब्द ब्रह्मके नाममें भी आता है। अग्नि और ईश्वरके धर्म विषम हैं यह किसी शास्त्रसे सिद्ध करिये।

स्वामी दर्शनानन्दजीके इतना कह चुकने पर पांच बजनेमें पांच मिनिट शेष रहे। शास्त्रार्थ पांच बजे तक होना निश्चित हुआ था और यह शेष पांच मिनिट नियमानुसार वादि गजकेसरीजीके हिस्सेके थे परन्तु आर्यसमाजकी ओरके अग्रेसर बाबू मिट्ठनलालजी वकीलने यह पांच मिनिट सबको धन्यवाद आदि देनेको अपने अर्थ मांगे। यद्यपि आपसे यह कहा गया कि वादि गज केशरीजीके कह चुकने पर आप पांच नहीं वरन दस मिनिट अपने अर्थ ले सकते हैं क्योंकि ये पांच मिनिट नियमानुसार वादि गजकेसरीजीके हिस्सेके हैं परन्तु आपको इतना धैर्य्य न हुआ और आपने यही पांच मिनिट अपने अर्थ देनेको कईबार दृढ़ अनुरोध किया। आपके ऐसा करनेसे यह प्रतीत होता था और है कि अन्तिम वक्तव्य स्वामीजीका ही रहै और पब्लिकको यह बात प्रगट हो कि स्वामीजीका प्रश्न वादि गजकेसरीजी पर खड़ा रहा और वादि गजकेसरीजीने जो कुछ आक्षेप किया था उसका उत्तर स्वामीजीने दे दिया क्योंकि यदि ऐसा उनका अभिप्राय न होता तो वादिगजकेसरीजीके हिस्सेके ही पांच मिनिट क्यों लेते उनके बादके मिनिटोंमें आपकी क्या हानि थी। यद्यपि हम लोग बाब साहबकी इस चालको भली भांति जानते थे परन्तु यह जानकर कि पब्लिक (जैसा कि बाबू साहब समझते हैं) इतनी

मूर्ख नहीं कि इस जरासी बातसे अपने उस प्रभावको जो कि वादि गजकेसरीजीके युक्तियोंसे उनपर पड़ा था बदल दे बाबू साहबके इस आग्रहको स्वीकार कर लिया और वादि गजकेसरीजी जो स्वामीजीकी युक्तियोंका खण्डन करनेके अर्थ खड़े हुए थे बैठ गये।

यद्यपि वादि गजकेसरीजी (अपने हिस्सेके पांच मिनिट बाबू मिट्ठनलाल जी वकीलके लेलेनेके कारण) स्वामीजीके इन अन्तिम आक्षेपों और प्रश्नों का उत्तर न दे सके परन्तु सर्वसाधारणके हितार्थ इन आक्षेपोंका समाधान और प्रश्नोंका उत्तर अब प्रकाशित किया जाता है।

स्वामीजी जो यह कहते हैं कि 'इच्छा कर्म्मके निमित्तसे उत्पन्न होती है इस लिये इधर उधर जाती है' सो बिलकुल असम्बन्ध है। मालूम नहीं कि आपने इसे क्यों कहा और इच्छासे आपको किसकी इच्छा अभीष्ट है? यदि जीवकी तो उसका यहां क्या सम्बन्ध है? इत्यादि। अग्निमें इच्छा विषम बतलाना अत्यन्त हास्यास्पद है क्योंकि इच्छा चैतन्यमें होती है न कि जड़में। आपके न्याय दर्शनने अपने अध्याय १ आन्हिक १ सूत्र १० "इच्छा द्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति,, और वैशेषिक दर्शन अध्याय ३ आह्निक २ सूत्र ४में "प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि,, में इच्छाको आत्माका लिङ्ग (जिसको कि आपके गुरूजी महाराज अपने सत्यार्थप्रकाशमें गुण कहते हैं) माना है। वैशेषिक दर्शन अपने अध्याय २ आह्निक १ सूत्र ३ में अग्निका लिङ्ग "तेजो रूपस्पर्शवत्" रूप और स्पर्श कहता है न कि इच्छा। मालूम नहीं कि अग्निमें विषम इच्छा कहते हुए स्वामीजी किस अवस्थामें थे। स्वामी जी जो अग्नि और ईश्वरके धर्मोंको एक होने और गति देनेसे एकसा मानते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि अग्नि भिन्न भिन्न परमाणुवाला खण्ड द्रव्य और सबको गति न देने वाला है और ईश्वर आपके मन्तव्यानुसार एक अखण्ड द्रव्य और सबको गति देने वाला है अतः वैधर्म्य होनेसे वैषम्यता स्वतः सिद्ध है। अग्निके परमाणु बहुत होने पर भी वह ईश्वरके समान एक (अखण्ड) द्रव्य है ऐसा कैसे माना जा सकता है। प्रथम आप कहते थे कि 'जहां वैधर्म्य नहीं वहां वैषम्य नहीं, और अब आप कहते हैं कि 'वैधर्म्यका विषय एक है अतः वैषम्य नहीं. इन दोनों बातों में कौनसी बात ठीक है। यदि वैधर्म्यका विषय किसी मुख्य धर्म्ममें ही हुआ तो फिर स्वामीजीके दृष्टान्तसे दार्ष्टान्त कैसे

मिलकर उनके पक्षको स्पष्ट कर सकेगा। प्रथम तो यह नियम नहीं कि गति अग्निसे ही मिले क्योंकि जल, वायु, मनुष्य आदि अनेक गति देते हैं। यदि दुर्जन तोष न्यायसे अग्निसे ही गति मानी जाय तो फिर जब गति अग्नि ही देती है तो फिर आपके ब्रह्मकी क्या आवश्यकता है यदि अग्निमें गति ब्रह्मके द्वारा मानो तो इसमें हेतु क्या क्योंकि जब तक आपके सृष्टि कर्ता ब्रह्मकी सत्ता, समस्त वस्तुओंके कार्य्य करने में उसकी आवश्यकता, उसमें गति देनेकी शक्ति और अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध सिद्ध न हो तब तक वैसा कैसे माना जा सकता है। अग्नि और ईश्वरके धर्म्म विषम हैं क्योंकि अग्नि खण्ड द्रव्य अनेक परमाणुओं वाला, जड़, अशुद्ध और अनेक रस है और दूसरे विरुद्ध ईश्वर अखण्ड द्रव्य एक, चेतन, शुद्ध और एक रस है। इत्यादि।

बाबू मिट्ठनलालजी वकीलने आर्य्य समाजकी ओर से श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा, सर्वसाधारण और गवर्नमेण्टको धन्यवाद दिया और जैन समाजकी ओरसे चन्द्रसेनजी जैन वैद्यने स्वामीजी, पब्लिक और सम्राट व सम्राज्ञी तथा राज्यके समस्त अधिकारियोंका आभार माना। सभापतिजीने अपनी उपसंहार वक्तृतामें सबको धन्यवाद देते हुए शान्तिसे निष्पक्ष होकर शास्त्रार्थका परिणाम निकालनेकी प्रार्थनाकी और इतने जन समुदायमें शास्त्रार्थका कार्य्य निर्विघ्न समाप्त होने पर हर्ष प्रगट करते हुए सानन्द सभा विसर्जित की।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री
श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा—इटावा।

परिशिष्ट नम्बर "ख"।

मौखिक शास्त्रार्थ

जो श्रीयुत न्यायाचार्य्य पंडित माणिकचन्द जी जैन द्वारा श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा और सिकन्दराबाद गुरुकुलके अध्यापक पंडित यज्ञदत्त जी शास्त्री आर्य्यमें शनिवार ६ जुलाई सन् १९१२ ईस्वीको रात्रिके १०॥ बजे से १२॥ बजे तक श्याम गोदों की नशियां में हजारों लोगों के समक्ष श्रीमान् स्याद्वादवारिधि वादि गज केसरी पंडित गोपालदास जी वरैय्या जैनके सभापतित्व में हुआ।

शास्त्रीजी—ईश्वरो जगतः कर्ता पितामन्तरेण यथा न पुत्रोत्पत्तिस्तथैवेश्वरेण विना कथं जगति कार्याणि उत्पद्यन्ते । क्षित्यादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वाद् घटवदित्यनुमानेनापि ईश्वरं साधयामः ।

(भावार्थ) ईश्वर जगत् का कर्ता है । जैसे कि बिना पिताके पुत्र उत्पन्न नहीं होता इसी तरह बिना ईश्वर के संसार में कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं हो सक्ता । पृथ्वी आदिक कर्ता की बनाई हुई हैं कार्य होने से घड़े के समान इस अनुमानसे भी ईश्वरकी सिद्धि होती है ॥

न्यायाचार्यजी—ईश्वर सत्वे यदनुमानं प्रमाणत्वेनाभिप्रेतं तस्य चोत्पत्तिर्व्याप्तिज्ञानाद्भवेद् व्याप्तिज्ञानं च भवतां मिथ्याज्ञानं न मिथ्याज्ञानेन न सम्यगनुमानोत्पत्तिर्भविष्यति किंचास्मिन्ननुमाने सत्प्रतिपक्षोहेतुः क्षित्यङ्कुरादिकं कर्त्रजन्यं शरीराजन्यत्वादाकाशवत् अथच सृष्ट्यादौ यूनां पुरुषाणां पितरमन्तराऽपि उत्पत्तिरतो यथा पितरमन्तरा न पुत्रोत्पत्तिरिति दृष्टान्ताभासोऽयम् ।

(भावार्थ) ईश्वरकी सत्ता साधनेमें जो अनुमान प्रमाण आपने दिया उस अनुमान की उत्पत्ति व्याप्ति ज्ञानसे हो सकती है और व्याप्ति ज्ञान आपके यहां मिथ्या ज्ञानमें माना है "मिथ्या ज्ञानं त्रिविधं संशय विपर्यय तर्क भेदात्" मिथ्या व्याप्ति ज्ञानसे प्रमाण भूत अनुमान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । आपके दिये हुये अनुमानमें हेतु सत्प्रतिपक्ष भी है क्योंकि पृथ्वी आदिक किसी कर्त्ताके बनाये हुये नहीं हैं क्योंकि संसारमें बुद्धिमान् कर्त्ताके कार्य जितने देखे जाते हैं सो शरीर सहित कर्त्ताके बने हैं पृथ्वी आदिकका कोई शरीरधारी कर्त्ता दीखता नहीं अतः ये कर्त्ताके बनाये हुये नहीं है । कार्य की कारण मात्रसे व्याप्ति है कर्तासे नहीं और आपने पिताके विना पुत्रकी उत्पत्ति नहीं होती यह दृष्टान्त दिया सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टिकी आदिमें नवीन युवा पुरुष उछलते कूदते आपने ही विना पिताके पैदा हुये माने हैं ॥

शास्त्री जी—यद्भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्यक् । सत्प्रतिपक्षोदोषो नास्ति ईश्वरः सर्वशक्तिमान् । विना पद्भ्यांगच्छति अकर्णः शृणोति स्वीक्रियते चास्माभिः

(भावार्थ) जो आपने कहा सो ठीक है । सत्प्रतिपक्ष दोष नहीं है क्योंकि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है । विना पैरों के चलता है विना कानोंके सुनता है ऐसा हम मानते हैं ।

न्यायाचार्य्य जी—असमत्प्रदत्त दोषपरिहारश्च न विहितो भवद्भिः। कारणकार्ययोर्व्याप्तिर्न तु कर्तृकार्ययो किं च कृषाणकृत व्रीह्यादौ सकर्तृकत्वेपि वन्यवनस्पतिघासादौ कर्तुरभावेन हेतुर्व्यभिचारी च हेतुतावच्छेदकसम्बधेन हेतुता वच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता यत्र तत्रैव साध्यतावच्छेदक सम्बंधावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता यदि भवेत्तस्यैव सम्यग्घेतुता कार्यत्वहेतोश्चैवं सम्यग्घेतुत्वं नास्ति ।

(भावार्थ) हमारे दिये दोषोंका परिहार आपने विलकुल नहीं किया। कारण और कार्य की व्याप्ति है। जहां जहां कार्यत्व है वहां वहां कारणजन्यत्व है ऐसा नियम तो है किन्तु जहां जहां कार्यत्व है वहां २ कर्तासे जन्यत्व है ऐसा नियम मानोगे तो जङ्गलमें घास जड़ी वूटी किस कर्ताकी वनाई हैं ऐसा दिखलाइये। जहां हेतु रहै वहां साध्य रहै उसको सद्धेतु कहते हैं ऐसा सद्धेतु यह कार्यत्व नहीं है ।

शास्त्री जी-यत् भवद्भिः प्रतिपादितं स्वीक्रियते । ईश्वरप्रेरितोऽयं जनः सुख दुःखं भुनक्ति कार्यकरणे तु स्वतन्त्रः जीवात्मा किन्तु तत्फलभोगे परतन्त्रो यथा चौरः चौर्यं कृत्वा कारागृहे मजिष्ट्रेटप्रेरितो गच्छति ॥

(भावार्थ) जो आपने कहा हम स्वीकार करते हैं। ईश्वरकी सिद्धिमें हम दूसरा प्रमाण देते हैं कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है लेकिन फल स्वयं नहीं भोगने चाहता जैसे कि चोर चोरी करनेमें स्वतन्त्र है लेकिन चोरीका फल जेलखाना मजिष्ट्रेट द्वारा भोगता है। इसी तरह सुख दुःख फल भुगाने वाला ईश्वर है ।

न्यायाचार्य्यजी—यदि जीवः कर्मकरणे स्वतंत्रः फलभुक्तौ च परतन्त्रो भवेदत्र ब्रूमः कस्यचिच्छ्रेष्ठिनो धनापहरणरूपं फलं देयं स्यात्तत्रेश्वरः स्वयमागत्य तु नार्थमपहरेत् किन्तु चौरद्वारा फलमुपभोजयति तदा चौरः किमर्थं कारावासगृहमुपभोजयेत् चौरस्य च कर्मकरणे स्वातन्त्र्यपरिहारश्च यदि चौरः स्वतन्त्रतया श्रेष्ठिधनापहरणं कुर्याच्चेत् तदा ईश्वरेण किं फलं भोजयितं फलभुक्तौ पारतन्त्र्यपरिहारश्च वुभुक्षायां पिपासायां भोजनं पानं च विषभक्षणेन मरणादिफलं च कर्मकर्त्तुः फलभोगकर्त्तुश्च सामानाधिकरण्यं द्योतयन्ति ।

(भावार्थ) यदि जीव कार्य करनेमें स्वतंत्र है और फल भोगनेमें परतंत्र है यहां हम यह कहते हैं कि किसी सेठके सब धनका चुराया जाना ऐसा फल भोगना है ईश्वर तो स्वयं धन चुराता नहीं किन्तु चोरके द्वारा धन चुरवावैगा तो चोरको जेलखाना नहीं होना चाहिये क्योंकि चोरने ईश्वरकी प्रेरणासे धन चुराया था अतः चोरकर्म करनेमें स्वतंत्र है यह वात भी वाधि-

त हुई। यदि चोर स्वतंत्रतासे धनको चुराता है तो ईश्वरने फलक्याभुगाया इधर तो ईश्वर चोरके द्वारा धन चुरवावै उधर पुलिसको खबर करै कि तुम चोरको गिरफ्तार करलो यह कहां तक न्याय हो सक्ता है। भूख लगने पर खाना रूप कार्य करनेसे सुखरूपी फल वही भोगता है जहर खाना कार्य भी जीव करता है और उसका फल मरण भी वही भोगता है। इस लिये भोग करनेमें परतंत्र है इस नियममें व्यभिचार है।

शास्त्रीजी—यद्भवद्भिःप्रतिपादितं तत्सम्यक् सर्वेषांपितारक्षकः यदि फल भोगे परतन्त्रोनस्यात् कः फलंभोजयेत् यदि कर्मद्वारा भोजयेत्तदा कर्मतु गुण-स्तत्र कथं सुख दुःखदातृत्वं गुणे गुणानङ्गीकारात्।

(भावार्थ) जो आपने कहा सो हम मानते हैं। वह ईश्वर सबका पिता है रक्षक है। यदि जीव फल भोगमें परतंत्र नहीं मानो तो कौन फल भुगावैगा। कर्म तो गुण है और गुणमें सुख दुःख देना आदि गुण रह नहीं सक्ते। भोजन करना यही जीवका कर्म है। फल देना ईश्वरकृत है।

न्यायाचार्य्यजी—यदि ईश्वरःसर्वेषां पितास्यात् रक्षकश्च तदा पदार्थ सृष्टौ तस्य निमित्तकारणता व्याहन्येत रक्ष्यरक्षकभावो निमित्तनैमित्तिकभावम-तिवर्तते यत्र रक्ष्यरक्षकभावो यथा रूप्यकाणां रक्षकोभृत्योनसभृत्योरूप्यकाणां निर्माता किन्तु गोप्तैव किञ्च कर्मणां च द्रव्यत्वान्न गुणत्वेनोपकल्प्यमानानां ता-न्निमित्त दोषानुषङ्गः नच सर्वथा कर्मणामेव सुखदुःखोत्पादकत्वमिति मन्या-महे एकान्तं। विषयाद्विषयान्तरगतिदोषानुषङ्गश्चभवतांनिग्रहस्थानाप।

(भावार्थ) यदि ईश्वर सबका पिता अर्थात् (पातीतिपिता) रक्षक है तो ईश्वर यावत् कार्यमें कारण हो नहीं सक्ता क्योंकि रक्षक उस चीजका हुआ करता है जो चीज़ पहलेसे मौजूद हो जैसे कि रुपयोंकी रक्षा रोकड़िया या किसी नोकरको दीजाती है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि रोकड़िया उन रुपयोंको बनाता है किन्तु रुपये पहले ही से बने हैं इसी तरह कार्य भी ईश्वरसे भिन्न अपने कारणोंसे आत्मलाभ कर चुके हैं तब ईश्वर क्या करता है। आपने कर्मको गुण समझ रक्खा है सो ठीक नहीं है। कर्म द्रव्य पदार्थ है और उसमें सुख दुख दातृत्व शक्तियां मौजूद हैं। ऐसा एकान्त भी नहीं है कि कर्ता हर्ता भोक्ता कर्म ही है। आप ईश्वर कर्तृत्व विषयको छोड़कर विषयान्तरकी तरफ दौड़ते हैं। यह कर्तव्य आपका निग्रहस्थान करने वाला है।

शास्त्रीजी—यद् भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्यक्। यस्तर्कसंग्रहमधीते सो कर्म द्रव्यत्वेन नाङ्गीकरोति। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवद्र-

द्रव्याणि । विषयान्तरं न गच्छामि ईश्वर एककर्त्तासत्प्रतिपक्षहेत्वाभासस्य किं लक्षणं ।

(भावार्थ) आपने कहा सो ठीक है। कर्मको द्रव्य जिसने तर्क संग्रह पढ़ा है वो भी नहीं कहैगा। द्रव्यमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन, यह नव द्रव्य मानी हैं। विषयसे विषयान्तरको मैं नहीं जाता हूं ईश्वर कर्त्ता है सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभाव दिया सो हेत्वाभासका लक्षण क्या है।

न्यायाचार्य्यजी—कर्मणो द्रव्यत्वं गुणपर्ययवत्त्वेन साधयामः अन्यथा जीवद्रव्यसम्बन्धे विभावपरिणमनक्रिया कथमुपपद्येत बन्धो द्रव्य द्रव्ययोर्भवति बन्धमन्तरा विभावपरिणतिर्न स्यात् कदाचित् नैयायिकमतमोऽङ्गीक्रियते कदाचित् सांख्यमतानुसारेण प्रकृति जीवेश्वरपदार्थत्रयं कल्प्यते हेत्वाभासलक्षणं च पृष्टं तत्रेदं ब्रूमहे यादृशविशिष्टविषयनिश्चयविशिष्टयादृशविशिष्टविषयकत्वं अनुमिति प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपाघटितः अनुमिति प्रतिबन्धकतायां यद्रूपावच्छिन्नविषयत्वं अवच्छेदकं तादृशं यत्स्वावच्छिन्नाविषयप्रतीति विषयतावच्छेदकं तद्रूपावच्छिन्नाविषयप्रतीति विषयतावच्छेदकं यत्त्वं तदवच्छिन्नोऽनाहार्यो प्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित निश्चयवृत्तित्वविशिष्टयद्रूपावच्छिन्नविषयकत्वं अनुमिति प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितत्त्वं हेत्वाभासत्वं ईश्वरो यदि कर्त्ता स्यात् नित्यव्यापके क्रियाहानिः किञ्चान्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावो न चेश्वरेण देशकालव्यतिरेको घटते नित्यत्वाद् व्यापकत्वाच्च

(भावार्थ) कर्म द्रव्य है यदि कर्मको गुण माना जाय तो विभाव परिणति का कारण नहीं होसक्ता क्योंकि द्रव्य का द्रव्य के साथ बन्ध होने पर वैभाविक परिणमन होता है यह बात अशुद्ध जीव द्रव्य में अनुभूत है। कभी आप नैयायिक मतके अनुसार नौ द्रव्यों को मानकर कर्म द्रव्य नहीं होसक्ता ऐसा कहते हैं। कभी जीव ईश्वर प्रकृति इस तरह तीन पदार्थ मानते हैं यदि ईश्वरको कर्ता माना जाय तो व्यापकमें क्रिया नहीं हो सक्ती क्योंकि जो पदार्थ जितने अंश में ठसा ठस भरा हुआ है उसमें देश से दूसरे देशको प्राप्त होना रूप क्रिया हो नहीं सक्ती कितना ही हुशियार नटका बालकहो लेकिन अपने आप अपने कन्धे पर नहीं बैठ सक्ता अथवा कितनी ही पैनी तलवार क्यों नहीं हो आपही अपनेको नहीं काट सक्ती ईश्वर जब सब जगहमें ठसाठस भरा हुआ है उसमें परमाणुओंको प्रेरणा करना ऐसी क्रिया हो नहीं सक्ती। ईश्वरके साथ पृथिव्यादि कार्योंका अन्वयव्यतिरेक भी नहीं बनता क्योंकि जहां जहां पृथिव्यादिक हैं वहां वहां ईश्वर है इसमें कोई प्रमाण नहीं अतः अन्वय नहीं बनता जहां जहां ईश्वर नहीं है वहां २ पृथिव्यादि नहीं है ऐसा देश-

व्यतिरेक नहीं बनता क्योंकि ईश्वर व्यापक है उसका अभाव कहीं भी नहीं पाया जाता। और जब जब ईश्वर नहीं तब तब क्षित्यादि नहीं ऐसा कालव्यतिरेक भी नहीं बन सक्ता क्योंकि ईश्वर नित्य है उसका कभी किसी (काल में भी) अभाव नहीं मिलता अन्वयव्यतिरेक भावसे कार्य कारण भाव व्याप्य है अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभाव व्यापक है और कार्यकारणभाव व्याप्य है तब व्यापक अन्वयव्यतिरेकभाव ही नहीं है तो कार्यकारणभाव जो कि व्याप्य है कैसे बन सकेगा ?।

शास्त्री जी—यद् भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्यक्। कर्म तु क्षणत्रयवृत्ति किन्तु संस्कारवशाज्जीवः फलं प्राप्नोति कर्म तु जडपदार्थः कथं चेतने फलं भोजयेत्। ईश्वरो दयालुः चौरस्य कारागृहे प्रेषणमेव कार्यं करोति यथा दयालुर्न्यायकारः तत्फलं भोजयति इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं शरीरम्॥

(भावार्थ) आपने कर्मको कारण बताया कर्म तो तीनक्षण रहकर पुनः नष्ट होजाता है बाद में संस्कारके द्वारा स्वर्ग नर्कमें जीव जाता है कर्म जब जड़ पदार्थ है तो चेतन को फल कैसे देसक्ता है। ईश्वर दयालु है वह फल दिया करता है जैसे कि मजिष्ट्रेटकी यही दयालुता है कि चोरको सजाका हुक्म देवे॥

न्यायाचार्य जी—कर्मजडपदार्थः कथं चेतने फलमुपभोजयेदिति तु विषयान्तरं वृथैव इतस्ततः कालो नीयते जडवस्तु मदिरादिनाऽपि आत्मनि विकारोत्पत्तिः प्रत्यक्षैव। ईश्वरसाधने प्रयुक्तो हेतुः कार्यत्वं संदिग्धव्यभिचारी स श्यामो मित्रातनयत्वादितरमित्रातनयवदित्यादिवत् न च दयालो रित्येव कर्मयत्तद्योग्यं फलं दद्यात् किन्त्वेवं कर्त्तव्यता दयालुजनस्य। यत्कृपां कृत्वा तदपराधान् क्षाम्यति किं च दृष्टान्तमर्यादया स शरीरासर्वज्ञस्यैवेश्वरस्य सिद्धिः स्यात् नहि सर्वज्ञाशरीरस्य तथा च सिद्धान्तव्याघातः किं च संस्कारद्वाराऽपि कर्मणः स्वर्गनरकादिफलदातृत्वे किमन्तर्गडुनेश्वरेण॥

(भावार्थ) कर्म जड़ पदार्थ हो कर भी चेतन को विकृत कर सकता है। इसमें मदिरा सेवनसे आत्मामें मदोन्मत्तता हो जाना ही प्रमाण है। आप इस तरह विषयान्तर जाते हुए समययापन करते हैं। आपने जो ईश्वरसाधन में कार्यत्व हेतु जो दिया सो सन्दिग्ध व्यभिचारी है जैसे कि मित्रा नामकी स्त्रीके ४ पुत्र काले थे उन्हींको देखकर मित्राके गर्भके लड़केको भी कालेवर्णका होना अनुमान द्वारा सिद्ध किया लेकिन इसमें सन्देह है क्योंकि ये नियम नहीं है जिसके ४ लड़के काले हैं उसके पांचवां लड़का भी काला हो इसलिये विपक्षसे व्यावृत्ति इस हेतुकी संदिग्ध है अतः संदिग्ध व्यभिचारी

हेतु है। ईश्वरकी दयालुता यही है कि उनको फल देना जैसे कि मजिस्ट्रेटकी दयालुता यही है कि चोरको जेलखाने भेजे यह आपने कहा सो सर्वांश वाधित है यों तो सभी दयालु हो सकते हैं एकने गाली दीनी दूसरेने गाली देने वाले को ५ जूते लगा दीने ये भी दयालु हो जायगा। महाशय जी ऐसी दयालुता को कोई पामर लड़का भी दया नहीं कह सकता दया वही है कि उसके अपराधों को क्षमा करदें। आपके दिये दृष्टान्त (कुलाल) से ईश्वर शरीर सहित तथा असर्वज्ञ ही सिद्ध होगा क्योंकि नदी पर्वतादिक कार्य भी विना शरीर के बन नहीं सकते और जो अल्पज्ञ जन होता है वही अपनी इच्छापूर्तिके लिये घट पटादि बनाया करता है तथा गर्मी और सर्दी के चारचार महीने तो ठीक निकलते हैं। लेकिन चतुर्मासमें अकसर परमेश्वर गलती कर देता है कभी दो दो महीने विना वर्षाके निकल जाते हैं अतोपि अल्पज्ञता आई ऐसा मानोगे तो स्वसिद्धान्त से विरोध पड़ेगा। यदि दुर्भिक्ष स्वर्ग नर्क आदि जीवोंके धर्म अधर्मसे होते हैं ऐसा कहोगे तो बीचमें ईश्वरको माननेकी क्या आवश्यकता है॥

शास्त्री जी—यद्भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्यक्। जगत् उत्पद्यते विनश्यति सनैमित्तिकः निमित्तमन्तरा नोत्पद्यते विनश्यति सनिमित्त ईश्वरः जीवकर्मकरणे स्वतन्त्रः फलभोगे च परतन्त्रः।

(भावार्थ)--जगत् बराबर उत्पन्न होता है नष्ट होता है यह उत्पाद विनाश विना किसी निमित्त के हो नहीं सकता वो निमित्त कौन है? ईश्वर। जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र है और फल भोगनेमें परतन्त्र है॥

न्यायाचार्य जी—अस्मत्प्रदत्त दोषपरिहारश्च न विधीयते। उत्पादविनाशौ च यद्यपि नैमित्तिकौ परं न स निमित्त ईश्वरः किन्तु अनन्तगुण समुदायात्मके द्रव्ये एको द्रव्यत्व नामको गुणो वर्त्तते तद्द्वारा एकामवस्थां त्यक्त्वा अवस्थान्तरं प्राप्नोति नित्यशस्तत्र च बहूनि अनिर्धारितानि निमित्तानि यथा मुद्गरादिना घटस्याभिघाते घटो विनश्यति कपाल मुत्पद्यते। किञ्च संसारे यानि कुत्सितकार्याणि तेषां सर्वेषां विधाता ईश्वरः स्यात् तस्य सर्वत्र निमित्तकारणत्वात् यदि कार्यमात्रव्यापारे तस्य नैमित्तिको यत्नः! तदा क्षित्यादि कार्यकर्त्तव्यतायां तस्य निमित्तं वाच्यं यदि स्वाभाविकस्तदा सृष्टिप्रलयादि विरुद्धकार्योत्पत्तिरेकेन स्वभावेन कथं घटेत॥

(भावार्थ) महाप्राज्ञ जी महाराज हम दोष देते हैं उनको आप विलकुल ही उड़ादेते हैं अस्तु तुष्यन्तु न्यायेन हम आपका प्रत्युत्तर अवश्य ही देंगे। उत्पाद विनाश ईश्वरकृत हैं यह हो नहीं सकता दो विरुद्ध धर्म निरपेक्ष एक वस्तुमें रह नहीं सकते अनन्त गुणके समुदाय रूप द्रव्यमें द्रव्यत्व नाम

की एक शक्ति है वह एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थाको प्राप्त करती रहती है और भी अनेक निमित्त हैं जैसे कि मुगद्रसे घटको तोड़ डाला तो घटका नाश और कपालके उत्पादमें मुगदर निमित्त कारण पड़ा यदि ईश्वर कार्य मात्रमें निमित्त कारण माना जाय तो जितने संसारमें बुरे काम होते हैं सब ईश्वरकी तरफसे समझे जायंगे। यदि बुरे भले कार्य करना या पर्वत समुद्रादि बनाना उसका नैमित्तिक कर्म है तो वो निमित्त क्या है गंगा नदी हिमालय पर्वत जब बनाया था उसके पहले क्या वो निमित्त नहीं था। यदि कार्य कर्त्तव्यता विधि उसकी स्वाभाविक मानी जाय तो एक पदार्थमें दो स्वाभाविक विरुद्ध धर्म रह नहीं सकते अतः ईश्वर में सृष्टि रचना प्रलय विधान ये दो स्वाभाविक धर्म असम्भव हैं।

शास्त्री जी—यत्प्रतिपादितं तत्सम्यक्। किन्तु जीवाः कर्मकरणे स्वतन्त्रा इति प्रतिपादितं ईश्वरः दयालुः सन् फलं ददाति यथा मजिष्ट्रेटमन्तरेण न चौरः कारावासं गन्तुमिच्छति सईश्वरः दयालुः सर्वशक्तिमान् व्यापकः सर्वेषांगुरुः सर्वज्ञः।

(भावार्थ) जो आपने कहा सो ठीक है। जीव ही कर्म कुकर्म करते हैं ईश्वर तो फल भुगतवाता है जैसे चोर चोरी तो स्वतन्त्र करता है जेल खाने में परतन्त्र होकर जाता है वह ईश्वर दयालु है फल देता है सर्व शक्तिमान् है सबका गुरु है सर्वज्ञ है।

न्यायाचार्य्य जी—पुनरपि दोषान् निगलन्ति भवन्तो यद्येवं प्रणालिवैरीवर्तते तदाऽपि ईश्वरेणापराद्धं यज्जनान् कुकर्मभ्यो न निषेधयति नच कश्चित्पिता जन्मान्धं स्वपुत्रं कूपोन्मुखं विलोक्य तत्राभिपातं स्वपुत्रस्येच्छति पश्चाद्दण्डदाने समुत्सुको भवेत् किन्तु पूर्वत एव निषेधेन पितृत्व धर्म परिपालनास्यादेवमेव यः कश्चिज्जनः कुकर्म कर्तुमुत्सहेत तदैवेश्वरस्य निषेधेन भाव्यं यथा राजकीय कोटपालादयः चौर्यकर्म कर्तुमुत्सुकान् चौरान् प्रयत्नत एव प्रबन्धयन्ति यदि ते जानीयुश्चेत्। भवदभिमतश्च ईश्वरः सर्वज्ञो व्यापकश्च। किंच कुकर्म निवारणे तस्य शक्तिरपि विद्यते सर्वशक्तिमत्त्वात् निवारणमपि सम्यक् कर्तव्यं तस्यदयालुत्वात्।

(भावार्थ) यदि आप यही कहते हैं कि जीव ही कर्म कुकर्मोंका कर्ता है और ईश्वर दयालु है अतः फल देता है इस नियम के अनुसार भी संसार में कोई कुकर्म नहीं होना चाहिये। दयालु पिताका यह कर्तव्य नहीं है कि अपने अन्धे लड़केको पहले तो कूएमें गिर जाने दे पुनः उसको निकाल कर

उस गलतीका फल दे। ये संसारी जीव जब कुकर्ममें लगे हैं तो अन्धे ही हैं अतः कुकर्म करनेके पहले ही रोक देना चाहिये किसी जीवको कुकर्म करनेकी इच्छा हो रही है उसको ईश्वर जानता भी है क्योंकि सर्वज्ञ है जहां कुकर्म कर रहा है वहां भी है क्योंकि वो सर्व व्यापक है। कहीं १० आदमी चोरी करनेका विचार करते हों तो कोतवाल आदि यदि जान जाय तो पहले से ही रोक देते हैं अशक्ति हो या नहीं मालूम हो यह दूसरी बात है लेकिन अशक्ति और अज्ञान ईश्वरमें हो ही नहीं सकते क्योंकि वो आपने सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् माना है अतः वो रोक सकता है और रोकना उसको वाजिब भी है क्योंकि वो दयालु है। अतः ईश्वर को उक्त विशेषणोंसे विशिष्ट मानोगे तो संसार में कोई कुकर्म नहीं होना चाहिये।

शास्त्री जी—यत्प्रतिपादितंतत्सम्यक्। परन्तु असत्कर्माणि ईश्वरेण कृतानि इति न। जीवः स्वकर्म प्रेरितः करोति ईश्वरः कर्ता स्वतन्त्रत्वात् विश्वस्यकर्ता भुवनस्यगोप्ता इति श्रुतेश्च अतः कर्तृत्वमीश्वरेऽनुमीयते।

(भावार्थ) जो कह रहे हो ठीक है। ईश्वर असत्कर्मोंको नहीं करता। यह जीव कर्म की प्रेरणासे करता है। लेकिन ईश्वरमें स्वतन्त्रता है इस लिये स्वतन्त्रः कर्ता इस नियमके अनुसार ईश्वर ही कर्ता है आगम (वेद) में भी कर्ता लिखा है अब आप क्या कहते हैं।

न्यायाचार्यजी—यदि कर्मप्रेरितो जीवः कुकार्यं करोति पुनः स्वतन्त्रतया ईश्वरः कर्ता इति वदतोव्याघातः। आगमस्य अन्योन्याश्रयदोषदुष्टत्वाद् प्रामाण्यं। ईश्वरस्वरूपज्ञानं आगमप्रमाणाधीनं। आगमप्रामाण्यं चेश्वराधीनमिति किञ्च अस्मत्प्रदत्तदोषाणां चानिवारणा भवतां निग्रहस्थानाय किञ्च हेतोः सत्प्रतिपक्षत्वं व्याप्तिज्ञानस्यानुमिति करणस्य मवद्भिमतमिथ्याज्ञानस्य कथं ऽदनुमितिकरणं पितरमन्तरेण न पुत्रोत्पत्तिरिति दृष्टान्तस्य सृष्ट्यादौ समुत्पन्न युवपुरुषैर्दृष्टान्ताभासत्वं वन्यवनस्पतिप्रभृतिभिर्व्यभिचारः कर्मकर्तव्यतायां स्वतंत्रतायां फलभुक्तौ परतन्त्रतायां प्रतिपाद्यमानायां श्रेष्ठिचौरदृष्टान्तेन नियमभङ्गश्चेति पञ्चदोषनिवारणीया अन्यथा प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृता परिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे चेति नियमानुसारेण भवतां पराजयप्राप्तिः स्यात्।

(भावार्थ) कर्मकी प्रेरणासे ही यदि जीव कुकर्मोंको करता है ऐसा आप फरमाते हैं और ईश्वर स्वतन्त्रतया कर्ता है यह तो वदतो व्याघात दोष है अथवा मातामें वन्ध्याकी तरह वाक्य है। वेदसे जो आप ईश्वर कर्तृत्व सिद्ध करना चाहते हैं इसमें अन्ययोन्याश्रय दोष है ईश्वर कर्तृत्वमें प्रमा-

णता आगम (वेद) द्वारा होगी और वेदमें प्रमाणता ईश्वरके वाक्य हैं इस से होगी अतः आगममें प्रामाण्य नहीं हो सक्ता ॥ अभीतक आपने हमारे दिये हुये दोषोंका परिहार नहीं किया हमने पांच दोषोंका उद्भावन किया है प्रथम कार्यत्व हेतुको सत्प्रतिपक्षित किया था अर्थात् पृथिवी अङ्कुर मेरु आदिक किसी कर्ताके बनाये हुये नहीं है क्योंकि शरीरके द्वारा बने हुये ये प्रमाणित नहीं होते जैसे कि आकाश । दूसरा कार्यत्वहेतुसे कर्ताको सिद्ध करनेका अनुमान जो किया सो हो नहीं सक्ता क्योंकि अनुमान व्याप्तिज्ञान से होता है व्याप्तिज्ञान तुम्हारे यहां मिथ्याज्ञानोंमें गर्भित है संशय, विपर्यय, तर्क येतीन आपने मिथ्या ज्ञान माने हैं तर्क ज्ञान कहिये अथवा व्याप्ति ज्ञान ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । मिथ्या ज्ञान रूप व्याप्तिज्ञानसे सम्यगनुमान रूपी कार्य हो नहीं सक्ता कारण मिथ्या है तो कार्य भी मिथ्या हुआ करता है ॥ तीसरा कर्तामाननेमें पिताके विना पुत्रकी उत्पत्ति नहीं होती यह दृष्टान्त आपने दिया था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टिकी आदिमें उछलते कूदते सैकड़ों युवा पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं स्वयं आप उनके माता पिता नहीं मानते अतः यह दृष्टान्ताभास है । चौथा कार्यत्व हेतु व्यभिचरित है जङ्गलमें पैदा हुई घास जड़ी बूटीका कोई कर्ता प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता अतः संदिग्धव्यभिचारीभी है । पांचवां कर्म करनेमें जीव स्वतन्त्र है और फल भोगनेमें परतन्त्र है इसमें चोरका दृष्टान्त जो दिया था अर्थात् किसी सेठने ऐसा कर्म किया जिसका कि फल सेठका सब धन चुराया जाय ऐसा मिलना है अब ईश्वर तो स्वयं चुराने आता नहीं चोर उसका धन चुराता है । यदि ईश्वर चोरसे चुरवाता है तो चोरको जेलखाना क्यों होता है तथा ईश्वर कुकर्मकारक भी ठहरा और यदि चोर स्वतन्त्र चोरी करता है तो ईश्वरमें फल दातृत्व क्या रहा । अतः आपके "कर्म करने में स्वतन्त्रजीव है फल भोगनेमें परतन्त्र है,, इस प्रतिज्ञा तथा नियमका व्याघात होगया ।

इन पांच दोषोंका निवारण करके आगे चलिये अन्यथा न्याय सिद्धान्त के नियमानुसार आपका पराजय होजायगा ।

रात्रि विशेष हो जानेके कारण सर्व साधारणकी आज्ञानुसार जय जयकार ध्वनिके साथ सानन्द सभा समाप्त हुई ।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा–इटावा

उपसंहार ।

इन दोनों शास्त्रार्थोंको पढ़कर कहीं कोई ऐसा अनुमान न लग[illegible] जैन लोग ईश्वरको नहीं मानते अतः ईश्वरका स्वरूप सर्व साधारणके[illegible] नार्थ प्रकाशित किया जाता है ।

कर्म मल रहित शुद्ध जीवनमुक्त या मुक्त जीवको ही ईश्वर कहते [illegible] में कि क्षुधा, तृषा, भय, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, रति, अरति, [illegible] खेद, स्वेद, मद, निद्रा, रागद्वेष और मोह ये अठारह दूषण नहीं है। यथोक्तंच:—

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं ।
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि ॥
रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो ।
नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥

या जो अब ऐसा विशिष्ट आत्मा होगया है कि जो:—

न द्वेषी है न रागी है सदानन्द वीतरागी है। वह सब विषयोंका त्यागी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ टेक ॥ न खुद घटघटमें जाता है मगर घटघट का ज्ञाता है। वह सब बातोंका ज्ञाता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १ ॥ न करता है न हरता है नहीं औतार धरता है। मारता है न मरता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ २ ॥ ज्ञानके नूरसे पुरनूर है जिसका नहीं सानी। सरासर नूर नूरानी जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ३ ॥ न क्रोधी है न कामीहै न दुश्मन है न हामी है। वह सारे जगका स्वामी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥४। वह जाते पाक है दुनियांके झगड़ोंसे मुबर्रा है। आलिमुलगैब है वे ऐब ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ५ ॥ दयामय है शान्ति रस है परमवैराग्य मुद्रा है। न जाबिर है न काहिर है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ६ ॥ निरंजन निर्विकारी है निजानन्द रस विहारी है। सदा कल्याणकारी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ७ ॥ न जग जंजाल रचता है करम फलका न दाता है। वह सब बातोंका ज्ञाता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ८ ॥ वह सच्चिदानन्द रूपी है ज्ञानमय शिव स्वरूपी है। आप कल्याणरूपी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥९॥ जिस ईश्वरके ध्यानसेती बने ईश्वर कहे न्यामत । वही ईश्वर हमारा है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १० ॥

या संक्षेपमें यों कहिये कि वह सर्वज्ञत्वेसति बीतराग अर्थात् ज्ञाता दृष्टा है॥

अन्तमें हमको पूर्ण आशा यथा दृढ़ विश्वास है कि सर्वसाधारण इस प्रकार ईश्वरके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धानकर सदैव स्व पर कल्याण कर सकने में समर्थ होंगे ।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा, इटावह ।